सोमसी

अंक 4

वर्ष 11

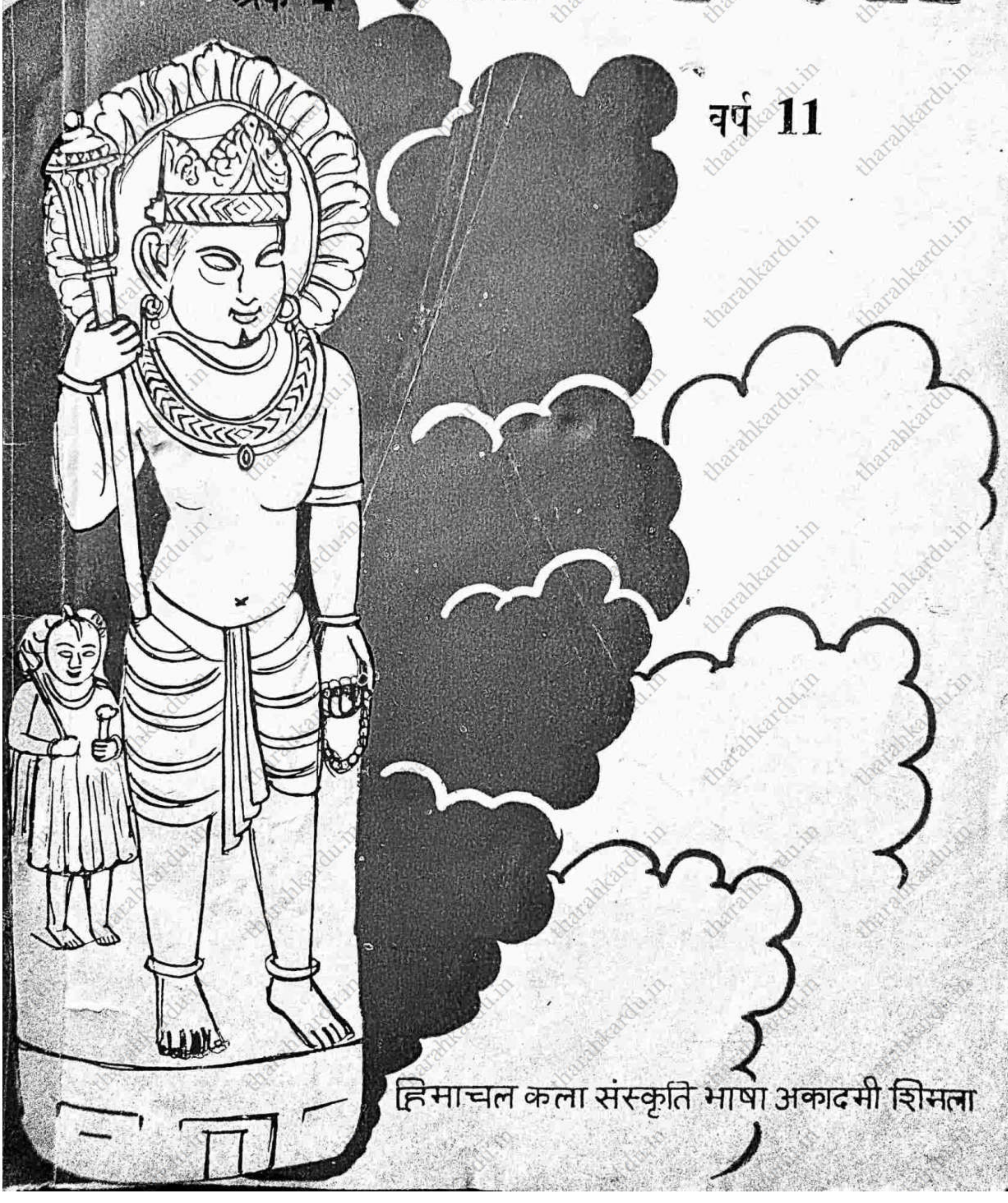

हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी शिमला

tharahkardu.in

सोमसी

हिमाचल कला संस्कृति और भाषा अकादमी
की त्रैमासिक पत्रिका

वर्ष 11 | अक्तूबर 1985 | अंक 4

मुख्य सम्पादक
वीरभद्र सिंह
अध्यक्ष अकादमी

उप मुख्य सम्पादक
सागर चन्द नैयर
वरिष्ठ उपाध्यक्ष अकादमी

सम्पादक
एम०आर० ठाकुर

सहयोग
सरोज सांख्ययान
गिरिजा शर्मा

44

जनवरी, अप्रैल,
जुलाई व अक्तूबर
में प्रकाश्य

लेखक द्वारा दिए गए तथ्यों तथा विचारों से सम्पादक की सहमति आवश्यक नहीं ।

वार्षिक चन्दा 12 रुपए | एक प्रति 3 रुपए

हिमाचल कला संस्कृति और भाषा अकादमी
क्लिफ़ एण्ड एस्टेट, शिमला-171 001

हिन्दी अनुभाग

सोमसी अक्तूबर 1985

इस अंक में

क्रमांङ्क	लेख का नाम	लेखक	पृष्ठ संख्या
	हिन्दी अनुभाग		
1.	कांगड़ा जनपद में शिव मन्दिर	डॉ० ब्रह्म दत्त शर्मा	1
2.	गुरु गोबिंद सिंह तथा राजा भीम चन्द के संघर्ष का साक्षी बिलासपुर	देवेन्द्र कुमार काश्यप	10
3.	सुथरा सम्प्रदाय	पृथुराम शास्त्री	17
4.	सैरा धार की प्रसिद्ध देवी मां मनसा	प्रेमलाल गौतम आचार्य	23
5.	कुल्लू के ऐतिहासिक लोकगीत	ऊषा	33
6,	चच्योट क्षेत्रीय गृह निर्माण कला व प्रदेश प्रथा	मोती लाल घई	40
7.	हिमाचली लोकगीतों की बहुविधता	राज रानी शर्मा	45
8.	हिमाचल और हिमाचली प्राचीन परम्परा—एक पर्यटकीय पर्यालोचन	डॉ० सत्य पाल शर्मा	51
9.	कुल्लू में नोड़ जाति का प्रादुर्भाव तथा काहिका	चुनी लाल	56
10.	हिमाचली लोक संगीत पर भौगोलिक स्थिति का प्रभाव	इनाक्षी महाजन	63
11.	शियाणा ऋषि	डॉ० बलदेव ठाकुर	71
12.	बुशहर व बुशहरी	परमा नन्द श्रवण	77
	संस्कृतानुभाग:		
1.	'काव्य-प्रयोजनम्'	उर्मिल गौतम शास्त्री	82
2.	राजकीय संस्कृत महाविद्यालये महाकवि कालिदास जयन्त्यावसरे पुष्पाञ्जलय:	देव राम सती	85
3.	'धन्योऽयम् हिमाचल:'	सतीश शर्मा शास्त्री	87
4.	भारतीय संस्कृतौ नारी स्थानम् आधुनिका नारी च	रामेश्वर दत्त शर्मा दर्शनाचार्य	89

के माध्यम से यहां की छोटी रियासतों के बड़े राजाओं ने निश्चय ही मैदानों में ह्रसित हो रही कलाओं को पहाड़ों में विकसित किया। कांगड़ा के घमण्ड चंद, संसार चंद, चम्बा के भूरिसिंह, बिलासपुर के अजमेर चन्द, हीरा चन्द, कुल्लू के राजा मानसिंह, नूरपुर के राजा जगत सिंह का नाम इस सम्बन्ध में विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनके राजदरबारों में न केवल कलाकारों को शरण मिली अपितु कला सर्जन में पूर्ण प्रोत्साहन प्राप्त हुआ।

ऐसे वातावरण में पनपी ललित कलाओं पर हिमाचल प्रदेश को विशेष गर्व है। कांगड़ा शैली चित्रकला देश की कुछेक चित्रकलाओं में से एक है जिन्होंने संसार भर की कलाओं में विशेष स्थान बनाया है। कांगड़ा कलम के चित्रों ने भारत ही क्या विदेशों के अनेक महत्त्वपूर्ण संग्रहालयों की शोभा बढ़ाई है। राज्य संग्रहालय शिमला और भूरि सिंह संग्रहालय चम्बा में ऐसे चित्र आज कला प्रेमियों और शोध छात्र-छात्राओं के लिए प्रदर्शित हैं। इनकी एक परम्परा प्रदेश के अनेक मन्दिरों और राजमहलों में भित्ति चित्रों के रूप में सुरक्षित है। नूरपुर, चम्बा, सुजानपुर, नदौन, अर्की, कुल्लू और मण्डी के अनेक मन्दिर अपने भित्ति चित्रों के लिए प्रसिद्ध हैं। प्रदेश ने अपनी महान कला सम्पदा को संजोए रखा है यह बात उन कुशल गृहिणियों से स्पष्ट होती है जो आज भी तीज-त्योहारों के अवसरों पर दीवारों और फर्श पर सुन्दर चित्रकारी प्रदर्शित करती हैं। चम्बा के रूमाल और जनजातीय क्षेत्रों के थनके प्रदेश की चित्र कला के अनूठे उदाहरण हैं। यह बात सिद्ध हो चुकी है कि पहाड़ी शैली चित्र कला मुगल या राजस्थानी चित्रकलाओं की अनुकृति नहीं है। इसके आधार में पहाड़ी क्षेत्र की लोककलाएं रही हैं।

मंदिरों की अनेक शैलियों का एक साथ अध्ययन करने के लिए हिमाचल प्रदेश एक अत्यन्त सुलभ वातावरण उपलब्ध कराता है। यहां मंदिरों की वास्तुकला की अनेक शैलियां विद्यमान हैं। उत्तरीभारत के मैदानों की शिखर शैली में बजनाथ का शिव मंदिर, बजौरा का विश्वेश्वर महादेव मंदिर, चम्बा का लक्ष्मी-नारायण और हरिराय मंदिर, कुल्लू में नगर का शिव मंदिर और जगतसुख का गौरीशंकर मंदिर उत्कृष्ट उदाहरण हैं। पूरी चट्टान को काट कर बनाया मसरुर का मंदिर सारे उत्तर भारत में शिला मन्दिर का अद्भुत आदर्श है। इन दो शैलियों के अतिरिक्त पैगोडा या बहुछतीय मन्दिरों की अपनी अलग शोभा है। मनाली में हिडम्बा, नगर में त्रिपुरा सुन्दरी, दियार में त्रिजुगी नारायण, कुल्लू और मण्डी में कमांद नाम के स्थानों पर ऋषि पराशर के मन्दिर पैगोडा शैली के मन्दिरों के विशिष्ट उदाहरण हैं। ऐसे मन्दिर प्रायः नेपाल में अधिक देखने को मिलते हैं परन्तु विद्वानों का मत है कि इस शैली का आरम्भ हिमाचल में कुल्लू से हुआ है। परन्तु हिमाचल प्रदेश के मन्दिरों की मौलिक शैली ढलवां छत के मन्दिरों की है। ये पत्थर और शहतीरों की दीवारों के बने हैं जिनकी छतें पत्थर की सलेटों से

सम्पादकीय

हिमालय पर्वत आदिकाल से भारतवर्ष का भाग्यविधाता रहा है। भारत के नियति-निर्धारण में हिमालय ने विशेष योगदान दिया है। भौगोलिक स्थिति में जहां हिमालय को भारत का शाश्वत प्रहरी कहा गया है, वहां यह भारतीय संस्कृति का भी मूल स्रोत है। यह भारत की सार्वदेशिक सांस्कृतिक विकास का मूलाधार है। यह वही धरा है जो आर्य और अनार्य जातियों की आदिकाल में संगम-स्थली रही है, और जहां विभिन्न जातियों ने अत्यन्त अनुकूल वातावरण में पारस्परिक सद्भाव में रहते हुए विशिष्ट जीवन पद्धति और सम्मिश्रित संस्कृति को जन्म दिया है। यही कारण है कि समस्त हिमालय खण्ड प्राचीन समय से लेकर साहित्य-सर्जन और कला-उपार्जन के लिए अत्यन्त उपयुक्त वातावरण प्रदान करता रहा है।

हिमालय पर्वत में वर्तमान हिमाचल प्रदेश का क्षेत्र विशिष्ट स्थान रखता है। यहीं आदि ऋषियों ने वेदों की रचना की है। आर्य लोग सप्तसिन्धु, में रहते थे और सप्त सिन्धु, का प्रमुख भाग इसी क्षेत्र में स्थित था। वेदों को विश्व का सब से प्राचीन साहित्य माना जाता है और इस तरह इस महान साहित्य की रचना का श्रेय इसी भूखण्ड को जाता है।

मध्यकालीन युग में जब देश का बहुत बड़ा भाग बाहरी आक्रमणों और पारस्परिक संघर्ष के कारण बहुत बुरी तरह संत्रस्त था, हिमालय के इस भूखण्ड में शान्त वातावरण स्थापित रहा और यह मैदानी क्षेत्र के कलाकारों और साहित्यकारों की शरण-स्थली बना। इसमें यहां के शासकों ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। मैदानों की विक्षोभपूर्ण परिस्थितियों से पलायन के लिए विवश हुए कलाकारों को हिमाचल क्षेत्र के राजाओं ने न केवल शरण दी वरन् उनकी कला-सृजनता के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान किया, साथ ही उन्हें हर तरह से प्रोत्साहित भी किया। इस तरह धन, दान, पुरस्कार, श्रेय

कांगड़ा जनपद में शिव मन्दिर

डॉ० ब्रह्म दत्त शर्मा

महादेव शिव सर्व शक्तिमान देवता हैं। शिव भारतीयों के मध्य महज उनके सर्वाधिक पूज्य देव ही नहीं है बल्कि ऐसे प्राचीनतम देव हैं जिनकी मान्यता भारतीय संस्कृति के विभिन्न चरणों में किसी न किसी रूप में प्रमुख रूप से प्रचलित रही है। हिमालय की उन चोटियों पर शिव का आवास माना गया है जहां एक अर्से तक मानव के चरण नहीं पड़े थे। वस्तुत: शिव और हिमालय की एक दूसरे के बिना कल्पना नहीं की जा सकती। हिमालय के आंचल में स्थित हिमाचल प्रदेश में तो शिव का प्रत्यक्षवास है, हिमालय (हिमाचल) इनका श्वसुरालय है और श्वसुरालय किसको प्रिय नहीं होता ? शिव की परिकल्पना और भक्ति-भावना के लिए अत्यन्त उपयुक्त हिमाचल प्रदेश में अति प्राचीनकाल से शिव भक्ति की गौरवपूर्ण परम्परा रही है। लोकाचार, इतिहास, साहित्य और पुरातात्विक दृष्टि से सिद्ध होता है कि शिव-पूजन हिमाचल में प्राचीनकाल से प्रचलित था। हिमाचल में पौराणिक देवताओं में सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान शिव को प्राप्त है। प्राचीन शिव मन्दिरों की सर्वाधिक संख्या इस बात का द्योतक है कि यहां पर शैव धर्म की बड़ी मान्यता और व्यापकता रही है। शिव महादेव मंगल और कल्याण के देवता है, वह संहर्ता ही नहीं, सृष्टा भी हैं। कुछ भक्तों की धारणा में वे सृष्टि के प्रथम कर्ता एवं सृष्टि रचयिता हैं। शाश्वत अक्षुण्ण एक 'सदा शिव' है। कुछ भक्तों की दृष्टि में वे आदर्श योगी और अवधूत हैं। अपरिमेय तपोबल निधान, सर्वशक्तिमान व शापदाता हैं। वे मांसाहारी, सुरापेयी, गरलपेयी तथा प्रतिदिन सवामन भांग खाने वाले हैं। अन्य आस्थावानों के लिए वे निराकार भावमात्र हैं और लिंगाकार में प्रदर्शित किए गए हैं। इस रूप में वे माया 'प्रकृति' की सृजनात्मक शक्ति के परिचायक भी हैं। शिव भक्त शिवालय में जल एवं बिल पत्री चढ़ा कर घंटी बजा कर तथा शिवजी की स्तुति गा कर उसकी पूजा करते हैं। वे माथे पर क्षैतिजिक त्रि रेखीय तिलक लगाते हैं और प्राय: रूद्राक्ष की माला धारण करते हैं।

हिमाचल शिव को अतिप्रिय है। इसीलिए हिमाचल वासी शिव और शक्ति के उपासक है। हिमाचल प्रदेश में शिव महादेव के पूजा स्थल शिवालय, शिवदुआला और पिण्डी के रूप में मिलते हैं। शिमला में कोटेश्वर महादेव, कुल्लू में शमशीर, सुराज में ईश्वरी महादेव, मण्डी में भूतनाथ

ढकी होती हैं। उपरि महासू, मण्डी और किन्नौर में ऐसे मन्दिरो की बहुतायत है। जनजातीय क्षेत्रों में जहां एक ओर भरमौर के चौरासी मन्दिर मैदानी वास्तु कला शैली के आदर्श हैं वहां लाहुल-स्पिति जिला और किन्नौर के उपरि भागों में बौध धर्म के पूजा स्थान गोम्पा एक नितान्त भिन्न शैली को अपनाए हुए हैं। ताबों की, कानम, रिब्बा, गोम्पूर आदि गोम्पाओं ने प्राचीन समय से देश-विदेश के दर्शकों और पर्यटकों को आकर्षित किया।

इन मन्दिरों और गोम्पाओं में प्रतिष्ठित मूर्तियों का अपना अलग ही महत्त्व है। यह पहाड़ी मूर्ति-कला की समृद्धि को दर्शाती हैं। हाटकोटी की महिषासुर मर्दिनी, भरमौर की लक्षणा देवी, छतराड़ी की शक्तिदेवी और उदयपुर की देवी के मन्दिर में देवियों की मूर्तियां अपनी कला कुशलता की अद्वितीय कृतियां हैं। प्रदेश में कांस्य, प्रस्तर, अष्टधातु और पीतल से निर्मित मूर्तियां अपनी प्राचीन परम्पराओं की विशिष्ट उदारण हैं।

प्रदेश की इन अमूल्य निधियों के संरक्षण और विकास प्रसार के लिए प्रदेश की सरकार सतर्क और सजग है। प्रदेश के 32 मन्दिर भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग के संरक्षणाधीन है। अन्य मन्दिरों और ऐतिहासिक महत्व के स्मारकों के संरक्षण के लिए सरकार ने हिमाचल प्रदेश प्राचीन तथा ऐतिहासिक स्मारक और पुरातात्विक स्थल एवं अवशेष अधिनियम 1976 में पारित किया है। भाषा एवं संस्कृति विभाग ऐतिहासिक और पुरातत्विक महत्त्व के प्राचीन मन्दिरों की मुरम्मत के लिए सहायतानुदान देता है। मंदिरों के भित्ति चित्र समय और ऋतु की गति के साथ नष्ट हो रहे हैं। हिमाचल कला, संस्कृति और भाषा अकादमी ऐसे चित्रों की अनुकृतियां तैयार कर रही है। अब तक सुजानपुर टिहरा, नगरोटा, शोधी और चम्बा के गणदेहरा मन्दिरों के भित्ति चित्रों की अनुकृतियां तैयार की जा चुकी हैं। प्रदेश की पारम्परिक कलाओं को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से कलाकारों के बच्चों और अन्य कला-प्रशिक्षणार्थियों को 50.00 रुपये प्रतिमास की दर से छात्रवृतियां दी जाती है। अब तक 20 ऐसे प्रशिक्षु प्रशिक्षण प्राप्त कर चुके हैं या कर रहे हैं। विभाग और अकादमी प्रतिवर्ष प्रदेश के चित्रकारों के चित्रों की कला-प्रदर्शनियां और प्रतियोगिताएं आयोजित करते हैं। निजी प्रदर्शनियां लगवाने के लिए सहायतानुदान दिए जाते हैं। प्रदेश के कलाकारों को कला के क्षेत्र में हो रहे नये प्रतिमानों, आविष्कारों और प्रवृतियों से अवगत कर ने के उद्देश्य से अकादमी द्वारा प्रदेश से बाहर की प्रदर्शनियों का प्रबन्ध किया जाता है। पिछले ही वर्ष गेयटी थियेटर में राष्ट्रीय ललित कला अकादमी दिल्ली और राजस्थान ललित कला अकादमी की दस-दस दिनों की प्रदर्शनियां आयोजित की गई हैं। पहाड़ी शैली चित्रकला को प्रोत्साहन दिलाने से धर्मशाला में एक प्रशिक्षण केन्द्र खोला गया है। वहां तीन वर्षों के प्रशिक्षण के लिए प्रति वर्ष दस दस छात्रों को प्रवेश मिलता है।

— सम्पादक

ऐश्वर्य को पाकर महत्व पाता है तथा अन्त में शिवजी की स्मृति से शिव तत्व में सुख पूर्वक लीन हो जाता है।

शोभानाथ महादेव : त्रिनेत्र और परम कारुणिक शोमानाथ महादेव हिमालय पर रहते हैं, देवताओं के सहायक हैं, चन्द्रधर है और भय तथा दुःख के निवारक हैं। इनका स्फटिक वर्ण का शरीर बल्लोरी रंग की विभूति से लाल सा है और इन्होंने लोकहित में विष का पान किया था। शोमानाथ जी ने त्रिपुरासुर तथा अन्धकासुर का संहार किया था, गरूपवारी यज्ञमृग का ध्वंस किया था और ध्वस्तयज्ञ के प्रवर्तक दक्ष को यज्ञ पूर्ति में सहयोग देने से आप यज्ञ रक्षक भी कहे जाते हैं। ये सभी के अभीष्ट और कामनापूरक हैं तथा समस्त असुरों के विनाशक हैं। देवगण के भी इष्ट-दाता हैं और ज्ञानगम्य हैं तथा शुषुम्ना नाड़ी में प्रवादित होने वाले प्राणस्वरूप हैं। शोमानाथ महादेव के मन्दिर से कुछ दूरी पर गंगेश्वर महादेव का मन्दिर हैं। यहां पर गंगा ने शिवजी का चिरकाल तक भजन किया था और शिवजी से काशीवास का वर पाया था। वह आज तक वहीं रही है। आज भी स्नेह के कारण उसे छोड़ने का नाम नहीं लेती। कहते हैं कि जो व्यक्ति गंगेश्वर महादेव की पूजा करता है वह गंगा के प्रभाव से अन्त में मोक्ष पाता है। इस मन्दिर के बरामदे में एक छोटा सा मन्दिर चढ़ी के राणा शोमाचन्द में बनवाया था। कालान्तर में यह मन्दिर ही श्री शोमानाथ नाम से जाना जाने लगा। यहां के पुजारी मोजकी ब्राह्मण होते हैं और वहां पर आय व चढ़ावे का हिसाब एक गिरि गोस्वामी रखता है, वह शतशः गोत्रीय होता है और ब्रह्मचारी भी। यहां शिवरात्रि पर ही मेला लगता है। न्यस्त विग्रह एक आधा फुट ऊंची तथा चार फुट घेरे की चिण्डी है। शोमानाथ और गंगेश्वर महादेव ये दोनों मन्दिर जालन्धरपीठ रेखा के बाहिरी भाग हिमालय पर्वत की सन्धि में स्थित है।

नन्दिकेश्वर महादेव : ये जालन्धर पीठ की उत्तर दिशा के द्वारपाल हैं। पुराने समय में यहां पर ही नन्दी ने परिमित आहार के साथ सैंकड़ों वर्षों तक तप किया था। फलस्वरूप शिव गणों का नेता बनने का वर पाया और गणाधिपति बने। यहां एक आश्चर्य यह था कि स्तम्भादि के पार्थिव आधार के बिना आसमान में ही एक शिला लटकती रहती थी। इसीने नन्दीकेश्वर महादेव को ढांप (आच्छादित कर) रखा था। कहते हैं कि एक बार रानी पूजा करने के लिए आई तो वह डर गई कि कहीं मूर्ति उसी पर न गिर पड़े। अतः उसने इस मूर्ति को आधार पर स्थापित करा दिया। नन्दिकेश्वर महादेव का मन्दिर सुकेत की रानी ने बनवाया है। इसे ही जदरागल का नन्दिकेश्वर मन्दिर कहते हैं। मन्दिर में शिवजी की प्रतिमा जलेहर पर स्थित है और डेढ बालिश्त ऊंची है। दो गिरि गोस्वामी यहां का कार्यकलाप संभालते हैं। दोनों मतलस गोत्रीय होते हैं। इसमें से एक विवाहित और दूसरा ब्रह्मचारी होता है, उतराधिकारी शिष्य भी हो सकता है और पुत्र भी। शिवरात्री पर यहां मेला लगता है। तुम्बिकेश और पल्लिकेश महादेव के मन्दिर यहीं पर हैं। सामर्थ्य सिद्धि के लिए तुम्बिकेश की यात्रा करनी चाहिए और निर्मल जल

महादेव, सिमौर में शिरगुल महादेव हमीरपुर में बिल्वकालेश्वर ग्रौर कांगड़ा में कालेश्वर, नन्दीकेश्वर, वैद्यनाथ ग्रौर कुंजेश्वर महादेव तथा ग्रन्य कई महादेवो के प्राचीन मन्दिर हैं। हिमाचल में भी देश के ग्रन्य भागों की तरह ही लोगों के मध्य शिव सर्वाधिक पूजनीय देव रहे हैं। लोगों की शिव में यह ग्रास्था ग्रनेक रूपों में ग्रभिव्यक्त हुई है। चम्बा ग्रौर किन्नौर के उन सर्वाधिक ऊंचे हिमालयी शिखरों में मणिमहेश ग्रौर किन्नर कैलाश को शिव का ग्रावास मान कर यहां की जनता जर्नादन ने उन्हें ग्रपनी ग्रास्था ग्रौर विश्वास में स्थान दिया है।

कांगड़ा जनपद में शिव महादेव के ग्रनेक प्राचीन मन्दिर हैं। वे यहां की धरोहर हैं। इनके निर्माण जहां धर्म परायण जनता का सक्रिय सहयोग रहा है, वहां प्राचीनतम कटोचवंश की भी ग्रपनी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इस राजवंश के ग्रश्रय में ग्रनेक शिव मन्दिरों का समय-समय पर निर्माण हुग्रा। इसके साथ ही निर्माण के पीछे ग्रनेक घटनायें ग्रौर जनश्रुतियां जुड़ी हुई हैं, जिनसे यहां के लोक जीवन की झांकी मिलती है। यहां के ग्रनेक धार्मिक कृत्य संस्कार व प्रसन्नता के ग्रवसर तब तक सम्पन्न नहीं माने जाते, जब तक इन मन्दिरों में स्थापित विशिष्ट देव की मनौती नहीं मानी जाती है। यहां पर कांगड़ा जनपद के इसी प्रकार के प्राचीन एवं भव्य शिव मन्दिरों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जाता है :-

कालेश्वर महादेव : दक्ष का तपःस्थल कालेश्वर है। यहां पर तपोकालीन महाकाली को शिवजी ने 'काली' नाम से पुकारा था ग्रौर उसने 'ईश्वर' कह कर उत्तर दिया था। 'काली ग्रौर ईश्वर इन सम्बोन्धनों से कालीश्वर-कालेश्वर नामकरण माना जा सकता है। शिव पार्वती के निवास ग्रौर मुनि वशिष्ठ के विप्राश होने से यह स्थान पवित्र हुग्रा। यहां शिव का भव्य मन्दिर है जिस चट्टान पर मन्दिर स्थित है, उसके चरणों से टकराती हुई ब्यास नदी बहती है। पाण्डव काल में इस स्थल पर स्थापित लिंग का मन्दिर बना। यह भी पाण्डवों के समय का कहा जाता है। कालेश्वर महादेव के सामने ब्यास नदी के दूसरे तट पर शालेश्वर महादेव का मन्दिर है। शालेश्वर महादेव के समान चिन्तानाशक ग्रौर कोई देवता नहीं है। इसी क्षेत्र में कश्यपेशग्रौर क्रोडेश्वर महादेव के मन्दिर हैं। नादौन-होशियारपुर सड़क पर ब्यास नदी के दांई ग्रोर चतुर्मुखेश्वर महादेव कामन्दिर है। जो व्यक्ति यथाविधि चतुर्थरवेश्वर की पूजा करता है, वह निष्पाप हो कर शिवलोक को पाता है।

करवीरेश्वर महादेव : यह जालन्धर पीठ का पश्चिम द्वार है। इस स्थान पर जप करने से शैव मन्त्र तत्काल सिद्ध होते हैं। यहां का करबीर वन ग्रतिरम्य था, फूलों से भरा रहता था। ग्रौर कोयलें इसमें सदा कूकती रहती थीं। रात को तेत्तीस कोटि देव इसी वन में महादेव करवीरेश्वर की पूजा करते थे। करवीरेश्वर महादेव भावातीत हैं, फिर भी भाव गम्य हैं, ज्ञान से परे हैं, फिर भी ज्ञान गम्य है, इच्छाग्रों को पूरा करने वाले कल्पवृक्ष ग्रौर वर्णस्वरूप हैं। ये सर्वेश सर्वव्यापक, वेद ज्ञान के मूलकारण, सर्ववन्द्य जनमात्र को सद्बुद्धि देने वाले, दीनों के नाथ, प्रेम के सागर ग्रौर भुवनेश हैं। जो व्यक्ति करवीरेश्वर महादेव की स्तुति करता है, वह ग्रपने ग्रभीष्ट ग्रौर

पूरक शिवजी के इस स्थान पर रहने से इसका नाम कुंजेश्वर पड़ा है। यह भी कहा जाता है कि यहां पर एक वृक्ष की टहनी पर कुंज (सारस) पक्षी ने घोसला बनाया और इसी में महादेव प्रकट हो गए। बिल्व वृक्ष, कुंज पक्षी किसी को आश्रय देने पर कुंजेश्वर महादेव नाम पड़ा। महादेव और देवियों का समूह सदा मिल कर रहते हैं। तत्कालीन कांगड़ा नरेश दिलावर चन्द निस्संतान था। उसे स्वप्न में आदेश हुआ कि यदि तुम शिव का मन्दिर बनवाओ तो सन्तान हो सकती है। अत: उसने पिण्डी की खोज कराई और बेल वृक्ष से इसे प्राप्त कर प्रतिष्ठित कराया और मन्दिर का निर्माण करवाया। तत्पश्चात राजा के यहां चार पुत्र रत्न पैदा हुए। पाण्डों का एक वर्ग क्रम से सेवा करता है। पुजारी भी पाण्डों में से होता है और ये सभी कौण्डिल्य गोत्रीय होते हैं। शिव रात्रि पर मेला होता है। प्रात: यहां मूर्ति को दाल-भात और चपाती का भोग लगता है तथा सांय भिगोये चने बांटे जाते हैं।

बालशंकर (बालकरुपी) महादेव : कांगड़ा जनपद में भगवान बाल शंकर का बालक रूपी मन्दिर अति प्रसिद्ध है। यहां के जनमानस में इस मन्दिर का विशिष्ट स्थान है। मूर्ति के प्रादुर्भाव, मन्दिर के निर्माण तथा नन्दीगण की स्थापना के पीछे भी महत्वपूर्ण घटनायें जुड़ी हैं। बल प्राप्ति के लिए तथा आजीवन बालकरूप में ही जीवन यापन हेतु भी साधक इसकी पूजा अर्चना करते हैं। यह मन्दिर सुजानपुर टीहरा से ब्यास नदी का पुल पार करने पर पांच किलोमीटर की दूरी पर जिला कांगड़ा की पालमपुर तहसील में स्थित है। यहां एक विशालकाय, ताम्रमयी नन्दीगण की मूर्ति भी है। इसके साथ पटयाल राजपूत जाति की अठारह-बीस वर्षीय कन्या की लोक गाथा जुड़ी हुई है। जब भी कटोच वंश पर कोई आपत्ति आने वाली होती थी बैल भयाक्रान्त सा हो जाता था। २६ आषाढ़ सम्वत् १६०२ को ऐसा ही हुआ और १५ श्रावण को राजा प्रताप चन्द की मृत्यु हो गई थी। इन्हीं कारणों से वृषभ की पूजा होती है तथा मनौती मानी जाती है। ज्येष्ठ एवं आषाढ़ के शनिवारों के दिन बालक रूपी में विशेष मेले लगते हैं। मुण्डन संस्कार प्राय: बालक रूपी मन्दिर में सम्पन्न होता है। केश मन्दिर में चढ़ा दिए जाते हैं। कुछ लोग अपने नवजात शिशुओं को भी चढ़ा देते हैं तथा कुछ धन देकर पुन: खरीद लेते हैं। इसके अतिरिक्त धन, घी, दही, छत्र, नारियल आदि भी चढ़ाये जाते हैं। ये भण्डार में रखे जाते हैं। मन्दिर के आस-पास १५-२० कोस क्षेत्र के वासी तब तक नया अन्न नहीं खाते, जब तक इसमें से कुछ बालक रूपी मन्दिर में न चढ़ा दें। यहां महादेव की प्रतिमा स्थापित है। बाबा बालक रूपी का महात्म्य जालन्धर पीठ दीपिका में परमसाधक प्रह्लादानन्दा चार्य कुलावधूत ने भी वर्णित किया है।

बालक रूपी का एक मन्दिर नगरोटा में भी है, परन्तु वहां कोई मेला नहीं लगता। यह मन्दिर बारह-तेरह पीढ़ियों से चला आ रहा है। यहां महादेव की चार अंगुल ऊंची प्रतिमा स्थापित है। पुरी जातीय गोसाईं इसका प्रबन्ध करते आ रहे हैं। यहां प्रातः व सांय पूजा होती है। प्रातः भुने चने तथा सांय रोटी का भोग लगता है। रात्रि को आरती होती है। पवित्र ज्योति जलाई जाती है।

वाले तुम्बिका-सरोवर (झील) में स्नान भी करना चाहिए। पल्लिकेश मन: कामना के दाता हैं और तत्रस्थ शिव नदी में स्नान करने से पुर्नजन्म नहीं होता।

वैद्यनाथ महादेव : जालन्धर पीठ की रेखा के बाहिरी भाग में हिमस्थ शंकर वैद्यनाथ का मन्दिर है। वर्तमान समय में तो इस स्थान को बैजनाथ नाम से पुकारते हैं। यही नाम भगवान शिवजी का है तथा इसी नाम से इस कस्बे को बैजनाथ कह कर पुकारा जाता है। विश्वास किया जाता है कि वह शिवलिंग अति प्राचीन है तथा इसकी गणना द्वादश ज्योतिलिंगों में की जाती है। कामना पूर्ति करने के उद्देश्य से प्राचीन मुनियों ने इस लिंग को कामना लिंग कहा है। समूचे ब्रह्माण्ड में इस लिंग के समान अन्य कोई लिंग नहीं है। कहते हैं कि बहुत पहले लकेश्वर रावण ने इस पावन स्थल पर घोर तप किया था और भगवान शंकर का अराधना करते समय अपने सिर काट-काट कर भगवान आशुतोष की सेवा में अर्पित किया थे। उसको पूजा से प्रसन्न होकर भगवान शंकर ने उसके सिर पुन: जोड़ दिए थे और उसे यथेष्ठ वरदान दिए थे। वाराणसी (काशी) के तुल्य यह धाम देव मर्त्यों के लिए दुलर्भ है। बैजनाथ स्थित भगवान शंकर के प्रसिद्ध मन्दिर के उत्तर पूर्व में एक अत्यन्त रमणीक स्थान श्री तारा जी का मन्दिर है। मन्दिर में भगवान तारकेश्वर की भव्य मूर्ति विराजमान है। यहीं पर शिवजी का मोक्षदायक ग्यारहवां लिंग भी है। इसी स्थान पर जालन्धर दैत्य के मारने से उत्पन्न पाप की शांति के लिए स्वयं भगवान शिवजी ने तारिणी देवी की अराधना की थी। बैजनाथ मन्दिर से पूर्वोत्तरकोण में कुछ ही दूरी पर केदारेश्वर महादेव का मन्दिर है। यहीं पर सिद्धिनाथ का प्राचीन मन्दिर है। अनुमानत: तथा जनश्रुति से यह मन्दिर मन्युक ग्राहक के पिता सिद्ध वणिक द्वारा बनाया हुआ प्रतीत होता है। जो व्यक्ति भगवान सिद्धिनाथ का जप और अनेक प्रकार की सामग्री से उनकी पूजा करता हैं, वह स्वयं सिद्धीश्वर हो जाता है। यहीं पर तारकेश्वर का मन्दिर है जिसका वर्णन जालन्धर महात्म्य में भी किया गया है। साथ ही एक मत्स्येन्द्र नाथ जी का भी प्राचीन मन्दिर जिसमें कई विचित्र मूर्तियां देखने को मिलती हैं।

महाकाल और लकुटेश महादेव : बैजनाथ से चार-पांच किलोमीटर की दूरी पर महाकाल का मन्दिर है। ये परमानन्द के दाता, बुद्धि के वितरक, संसार के स्वामी, दु:ख-समूह के दमन कर्त्ता, देव वन्द्य, बाघाम्बरधारी तथा तन्त्र-शास्त्रोक्त कौल विधि से गम्य हैं, तन्त्र शास्त्रों के मन्त्र तथा उनके अर्थों का ज्ञान करवाने वाले हैं। सृष्टि के मूल कारण और कामदेव के संहार कर्त्ता हैं। शिव, शम्भु, सुरेश, सर्वेश आदि इनके नाम हैं। पूर्व विद्वानों के अनुसार महाकाल ही शिव स्थान है। वहीं पर कुछ दूरी पर लकुटेश महादेव का मन्दिर है। मोक्ष की कामना से लकुटेश महादेव के मन्दिर में अवश्य जाना चाहिए।

कुंजेश्वर महादेव : व्यास नदी के किनारे कुंजेश्वर महादेव का मन्दिर है। पहले कभी व्यास नदी के तट पर विल्व वृक्षों का कुंज था। इसी कुंज में शिवजी पार्वती के साथ प्रसन्नता-पूर्वक देर तक रहे थे। यहीं पर शिवजी ने देव दुर्लभ अनोखे कौतुक किए थे, इसीलिए मनोरथ

नर्वदेश्वर महादेव : सुजानपुर स्थित इस मन्दिर में प्रतिष्ठित पिण्डी नर्मदा तट से लाई गई थी। इसी के नाम पर इस मन्दिर का नाम पड़ा। प्रसिद्ध कांगड़ा राजा संसार चन्द की रानी प्रसन्ना देवी ने सम्वत् १८७० में इस मन्दिर का निर्माण आरम्भ किया था जो १८८२ तक पूरा हुआ। चारों ओर सूर्य, गणेश, चतुर्भुजी देवी तथा लक्ष्मी नारायण के चार मन्दिर हैं। महादेव को प्रतिदिन पांच बार मिश्री, दूध तथा हलवे का भोग लगाया जाता है।

शिवजी गधर्व महादेव : यह मन्दिर घनियारा के गंधर्व दुर्ग के अवशेषों में स्थित है तथा यह दुर्ग सिक्ख काल में ध्वस्त हो गया था। अत्रि गोत्र का शकरीय ब्राह्मण यहां का पुजारी होता है। शिव रात्रि पर मेला लगता है। व्यक्ति को रुक-रुक कर आने वाले ज्वर के निवारणार्थ मनौती मानी जाती है और रोट चढ़ाया जाता है। प्रातः भात का तथा सांय भिगोये चने का प्रसाद चढ़ाया जाता है। इसी प्रकार इगलेश्वर महादेव का मन्दिर भी यहीं पर स्थित है जिसे राजा रणजीत सिंह के समसामयिक किसी भारती गोसांई ने बनवाया था। यहां पर भी नर्मदा से लाई गई श्वेत पिण्डी स्थापित है जो चार अंगुल ऊंची है। इस मन्दिर में कोई मेला नहीं लगता।

गम्भीरिया और वाडवेश्वर महादेव : गम्भीरिया महादेव का डल करेड़ी में है। मन्दिर तो यहां कोई नहीं है, पर भाद्रपद की शुक्ल पक्षीय अष्टमी को भक्तजन शिव पिण्डी के दर्शनार्थ एकत्र हो जाते हैं। समीपस्थ जलस्रोत में स्नान करना भी पावन माना जाता है। 'वाडवेश्वर' महादेव धर्मशाला का मन्दिर धर्मशाला में स्थित है जहां भाद्रपद शुक्ला अष्टमी को मेला लगता है। एक गिरि गोसाईं पुजारी का कार्य करता है। मूर्ति को प्रातः भात या रोटी तथा सांय चनों का भोग लगाया जाता है।

भागेश्वर महादेव : धर्मशाला में स्थित यह मन्दिर भागसू नाथ के नाम से भी प्रसिद्ध है। गद्दी जाति प्रायः इसे भागसू नाग' कहती है। कहते हैं कि दो बालिश्त ऊंची काली पिण्डी स्वतः प्रकट हुई थी। मन्दिर में प्रातः सांय पूजा होती है। दोपहर में पकवान का भोग लगाया जाता है। गो प्रसवोपरान्त भक्त दूध दही व घी चढ़ाते हैं। बलि रूप में अजःशावक भेंट किया जाता है। इसका सिर तथा पिछली टांगे पुजारी का भाग होता है। अनारसन गोत्रीय ब्रह्मचारी गिरि गोसाईं पूजा करता है। दुर्गाष्टमी पर मेला लगता है। सामान्य श्रद्धालुजन दूध, दही, घी, अन्न आदि भेंट रूप में चढ़ाते हैं।

गंग भैरव महादेव ; कांगड़ा-धर्मशाला मार्ग पर गंग भैरव महादेव का मन्दिर है। इसे सतयुग के समय का बताया जाता है। जनश्रुति है कि एक बार गंगा यहां विश्राम करने बैठ गई थी। पास ही कुछ गोपाल गौएं चरा रहे थे। उनमें से एक ने अपनी गंगा नामक गाय को पुकारा विश्राम कर रही गंगा ने सोचा कि मुझे पहचान लिया है, अतः वह एक पत्थर पर कुछ चिन्ह छोड़ कर लुप्त हो गई। यह प्रस्तर खण्ड अत्यन्त पावन माना जाता है। पीपल वृक्ष के नीचे महादेव की मूर्ति पहले से ही विराजमान थी। अतलस गोत्रीय गिरि गोसाईं यहां का पुजारी होता

बिल्वकालेश्वर (बिली केसर) महादेव : नादौन के समीप स्थित तप्पा सपड़ोह में यह मन्दिर स्थित है। यहीं पर कुणाह खड ब्यास नदी में मिलती है। जनश्रुति है कि दस हजार वर्ष पहले पाण्डवों ने अज्ञातवास में रातोंरात यहां मन्दिर बनाना चाहा था। परन्तु पूर्ण होने से पूर्व ही कुछ लोगों ने देख लिया और वह मन्दिर अधूरा छोड़ कर चले गए। इसे राजा भूमिचन्द ने पूर्ण करवाया था। आजकल यहां एक ब्रह्मचारी रहते है जिनकी आयु 90 वर्ष से ऊपर है।

लवणेश्वर महादेव : यह मन्दिर नादौन क केस्बे मध्य में विपाशा (ब्यास नदी) के किनारे पर स्थित है। मन्दिर के गर्भगृह मे चार हाथ ऊंचा तथा प्राय: इतनी ही परिधि का शिवलिंग प्रतिष्ठित है। यह उत्तरी भारत का विशालतम शिवलिंग है। इसे राजा अमिचन्द ने बनवाया था। स्थानीय जनश्रुति है कि अनावृष्टि या प्रकोप के समय लोग ब्यास नदी से जलघट भर कर लाते थे और नादौन रियासत का राजा शिवलिंग पर जल चढ़ाता रहता था। जब इस प्रकार वह चली जलधारा ब्यास के जल से जा मिलती थी तो मेघघाटा आकाश मे उमड़ पड़ती थी और शीघ्र ही वर्षा होने लगती थी। शिवरात्री पर यहां भण्डारे का आयोजन किया जाता है। यहां के पुजारी का कहना है कि शिवलिंग प्रतिवर्ष जौ भर बढ़ रहा है।

वटेश्वर (बाबा बड़ोह) महादेव : तहसील देहरा के चंगर क्षेत्र में बटेश्वर महादेव बाबा बड़ोह के नाम से प्रसिद्ध हैं। इस मन्दिर का आरम्भिक इतिहास पूर्णत: स्पष्ट नहीं है। परन्तु एक जनश्रुति के अनुसार एक वट वृक्ष के नीचे एक शिवलिंग प्रकट हुआ था। वट वृक्ष तो वैसे शिवजी के प्रिय वृक्षों में है। दयाणा में अभी यह काली नाथ के नाम से प्रसिद्ध है और बाबा लालपुरी इसका यक्षोगान करते थे। बाबा लाल पुरी राजा संसार चन्द के समकालीन थे, अत: यह मूर्ति राजा ससार चन्द के राज्यकाल में कदापि नहीं थी। कालान्तर में वहां एक छोटा सा मन्दिर बनाया गया। सम्वत् १७४० में गुलेर रियासत के बज़ीर सरदार ध्यान सिंह कोटला दुर्ग में बन्दी बना लिया गया। दयाणा निवासी के प्रहरी ने सहानुभूतिवश बज़ीर को प्रेरित किया कि वह बाबा बड़ोह की मनौती मानें। मनौती मानने के कुछ दिन बाद ही ध्यान सिंह मुक्त हो गए, पर मनौति के बारे में सब कुछ भूल गए और बीमार पड़ गए। मन्दिर में प्रभूत मात्रा मे धनराशि भेंट स्वरूप चढ़ाने पर वे स्वस्थ हो गए। तभी उन्होंने छोटे मन्दिर के स्थान पर बाबा लालपुरी की देखरेख में बड़ा मन्दिर बनवाया। बाबा बड़ोह के सेवक अपने घर में झोली, लौह शृंखला पादुकाएं और कुर्त्ती रखते हैं। मन्दिर में आटा तथा घी चढ़ाये जाते हैं। मन्दिर में एक वृषभ प्रतिमा भी है। इसी क्षेत्र में पंचानन और चिप्पलेश महादेव के भी मन्दिर है।

तप्पेश्वर महादेव : यह मन्दिर बरंज में स्थित है और यह मन्दिर किसी राजा ने बनवाया था। समीप ही तप्तगंगा नाम से प्रसिद्ध महामोक्ष दायिनी, गर्मजल वाली नदी सदा शिव को घेर कर बहती है। इस नदी का लोक नाम तप्तवानी (ततवाणी) प्रसिद्ध है। लश गोत्रीय ब्राह्मण गोस्वामी यहां का पुजारी होता है। शिवरात्री पर यहाँ मेला लगता है। एक फुट ऊंचा धवल शिवलिंग है।

कपाली भैरव का मन्दिर : यह भी कांगड़ा नगर में ही स्थित है। अपने ही पिता प्रजापति (दक्ष) के यज्ञ में जब शिवजी की पत्नी सती की अवमानना हुई तो उसने अपने प्राण त्याग दिए। जब उसका कपाल आकाश से गिर रहा था तो शिवजी के अनुचर 'भैरव' ने आकर उसे यहां थाम लिया था। इसीलिए इस मन्दिर का नाम कपाली भैरव पड़ा।

वीरभद्रेश्वर महादेव : वीरभद्र शिवजी के सर्वप्रधान गण थे तथा सेनानायक भी। यह मन्दिर बड़ा पवित्र माना जाता है और इसे सतयुग का बना हुआ बताया जाता है। यहां शिव का जलहेरी पर एक बालिश्त ऊंचा कृष्णवर्णीय लिंग है। वीरभद्रेश्वर की पूजा करने से व्यक्ति निःसन्देह शक्तिमान हो जाता है। वीरभद्रेश्वर से लेकर वृद्धकेदार के श्री चरणों तक के क्षेत्र को कुरुक्षेत्र कहा गया है। भगवती सती द्वारा शरीर छोड़ देने पर भगवान शिव उसके शोक से उद्विग्न होकर यहीं रहे, और सैंकड़ों वर्षों तक ध्यान मग्न होकर यहीं तप किया था। 'अर्जुनेश' का मन्दिर भी यहीं पर स्थित है। अर्जुन ने यहीं पर तप करके धनुर्वेद में सिद्धि पाई थी और विश्वभर में अजेय बने थे। बाण गंगा के समीप ही बाणेश्वर महादेव का मन्दिर स्थित है।

चक्रेश महादेव : शिव के जिस चक्र से जालन्धर राक्षस का वध किया था, वह यहां आकर गिरा था। इसी से इस मन्दिर का नाम चक्रतीर्थ पड़ा। मोढ़ू गोत्रीय पुरी गोस्वामी यहां का पुजारी होता है। कोई मेला नहीं लगता। मन्दिर में एक बालिश्त ऊंची शिव पिण्डी है। पुष्कर के मन्दिर से इसका सम्बन्ध बताया जाता है। यहां पर एक बार भी स्नान, दान, तर्पण और श्राद्ध करने से पितरों सहित विष्णुलोक की प्राप्ति होती है।

इस प्रकार अन्त में कहा जा सकता है कि कांगड़ा जनपद में शिवजी सर्वाधिक पूजनीय देव रहे हैं। लोगों की शिव में आस्था अनेक रूपों में प्रकट हुई है। इस क्षेत्र में कितने ही भव्य शिव मन्दिर हैं। जिनका इतिहास, संस्कृति स्थापत्य, मूर्तिकला और चित्रकला में दृष्टि से विशेष महत्त्व है। कांगड़ा जनपद में शैव-धर्म का प्रभुत्व डा० बोगल की इस टिपप्णी से आंका जा सकता है—

Though civaisom no doubt prevails every where and all the principal temples and tirthas are dedicated to Mahadeo or Devi under various names.
"अर्थात इसमें संदेह नहीं कि शिवास्था यहां सर्वव्यापक है और सभी मन्दिर एवं तीर्थ महादेव या किसी भी नाम की उनकी शक्ति से सम्बद्ध हैं।

है। शिवरात्रि पर मेला लगता है। एक बालिश्त ऊंचे तथा चार बालिश्त परिधि के काले पत्थर पर गंग भैरव महादेव की प्रतिमा उत्कीर्णित है।

जड़महादेव : यह मन्दिर विंडी में स्थित है। इसमें एक हाथ ऊंची शिव पिंडी जलेहर पर प्रस्थापित है। पिंडी की परिधि प्राय: एक फुट है। प्रात: गुड़ या भिगोए चने चढ़ाये जाते हैं। सांय काल यहां पर केवल आरती होती है। मेला तो यहां कोई नही लगता पर श्रद्धालु शिवरात्रि पर आ जाते हैं। मन्दिर का पुजारी मारीच गोत्रीय महा जोगी होता है।

गूगा महादेव तथा इन्द्रेश्वर महादेव : चैतड़ू स्थित इस मन्दिर का निर्माण किसी धनी गौतम गोत्रीय राजपूत ने करवाया था। उसने केदारनाथ का मन्दिर भी बनवाया था। यहां इन्द्रेश्वर की आधा हाथ ऊंची व एक फुट परिधि की पिण्डी है। समीप गूगा का अश्वारोही प्रतिमा है। प्रात:-सांय मूर्ति को खाण्ड तथा फलों का भोग लगाया जाता है। ज्येष्ठ प्रविष्टे १३ को मेला लगता है। सान्दरा गोत्रीय गोसाईं पुजारी होता है।

इन्द्रेश्वर महादेव : इन्द्रेश्वर महादेव का मन्दिर कांगड़ा नगर में ही है। एक बार कांगड़े का इन्द्र नामक राजा शोभा यात्रा में दुर्बल ऋषि के पास से गुजरा। ऋषि ने राजा को पुष्पाहार दिया। साधारण से हार को पहनना अपने पद मानानुकूल न मान राजा ने उसे अपने हाथी पर रख दिया। ऋषि ने क्रुध होकर उसे शाप दे दिया और राजा थोड़े समय में ही दयनीय स्थिति में पहुंच गया। राजा ने ऋषि से पुराने मान वैभव की स्थापना की। ऋषि ने उसे वज्रेश्वरी देवी के पूजन का परामर्श दिया। देवी ने प्रसन्न होकर उसकी पूर्व समृद्धि पुन: प्राप्त करा दी। इसी राजा ने इन्द्रेश्वर महादेव का मन्दिर बनवाया। यहां का पुजारी शांडिल्य ब्राह्मण होता है और मन्दिर में चार अंगुल ऊंची काली शिव पिण्डी है। पारसनाथ के भी दो विग्रह हैं।

कुण्डलेश्वर महादेव : कांगड़ा के मुख्य सरोवर सूर्यकुण्ड है समीपवर्ती तीन छोटे कुण्ड-राम कुण्ड सीता कुण्ड, तथा लक्ष्मण कुण्ड हैं। ये मन्दिर जहांगीर के समय से पहले के हैं। अतलस गोत्रीय गिरि गोस्वामी पुजारी यहां का पुजारी होता है। मेला कोई नहीं होता। सबसे बड़े भवन में शिवजी की एक बालिश्त ऊंची पिण्डी है। समीप ही मणिमहेश की छोटी प्रतिमा है। यह स्थान बहुत पवित्र माना जाता है। जो व्यक्ति कुण्डलेश्वर की पूजा-अर्चना करता है, वह शिवलोक को जाता है।

ठाकुर द्वारा मन्दिर : यह गुप्त गंगा पर कांगड़ा में ही स्थित है। यहां एक कुण्ड है जिसमें भूमि के नीचे ही नीचे मणिकर्ण के स्रोतों से पानी आता है, अत: गुप्त गंगा का कुण्ड-'शिव-कुण्ड' और 'गौरी कुण्ड' हैं। मन्दिर सम्वत 1923 का बना कहा जाता है गर्ग गोत्रीय लगवाल यहां का पुजारी होता है। मन्दिर में शिव, गंगा और नर्वदा की मूर्तियां हैं। शिव प्रतिमा चार अंगुल ऊंची है, अन्य दो कुछ छोटी हैं। चांदी-सोने के आभूषणों से इन्हें सजाया गया है। मन्दिर में प्रात:-सांय फलों का भोग लगाया जाता है।

नामकरण इसी के नाम पर 'व्यासुर' रखा गया। वही नाम समय के साथ-साथ बदलता हुआ व्यासुर से बिलासपुर बन गया।

1667 ई. में दीपचन्द की मृत्यु हो गई और उसका पुत्र भीम चन्द बिलासपुर की राजगद्दी पर बैठा। यह वही समय था जब गुरु गोबिन्द सिंह जी आनन्दपुर में अपने पिता की मृत्यु के उपरान्त सेना को संगठित कर रहे थे। गुरुजी अन्य उपहारों की अपेक्षा शस्त्र तथा घोड़े लेना अधिक पसन्द करते थे। गुरु जी ने सैनिक शक्ति बढ़ा लेने के बाद यह अनुभव किया कि उनके पास एक युद्ध का नगाड़ा (निसान) भी होना चाहिए। इस नगाड़े का नाम 'रणजीत नगाड़ा' रखा गया। इन्हीं दिनों बैशाखी के मेले पर काबुल में रहने वाले दुनी चन्द नामक सेवक ने एक बहुमूल्य तम्बू भेंट किया। गुरु जी की इस बढ़ती हुई शक्ति को देखकर बिलासपुर का राजा भीमचन्द उनसे मिलने आया। गुरु जी ने उसका भव्य स्वागत किया तथा आसाम के राजा द्वारा उनको प्रदत्त प्रसादी नामक उनके हाथी को देखकर उस पर मुग्ध हो गया। राजा भीमचन्द मन ही मन 'प्रसादी' हाथी को प्राप्त करने की योजना बनाने लगा। उसने गुरु जी के समक्ष अपनी इच्छा रखी परन्तु गुरु जी ने उसे देने से इन्कार कर दिया।

कुछ समय उपरान्त राजा भीमचन्द के पुत्र का विवाह श्रीनगर (गढ़वाल) के राजा फतेहशाह की पुत्री से होना निश्चित हुआ। इसे ठीक समय जान कर भीमचन्द ने बारात में ले जाने के लिए गुरु जी से पुन: हाथी मांगा परन्तु गुरु जी ने उसे तब भी इन्कार कर दिया तथा गुरु जी ने कहा कि हाथी केवल गुरु जी की सवारी निकालने के लिए ही है। इस बात से क्रुध होकर राजा ने सेना लेकर उन पर चढ़ाई कर दी। राजा हार कर तथा बहुत सा युद्ध का सामान लुटा कर वापिस चला गया।

नाहन के राजा मेदिनी प्रकाश ने गुरु जी को अपने यहां आने का निमंत्रण दिया, जिसे गुरु गोबिन्द सिंह जी ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। गुरु जी वहां जाते समय 500 उदासी सिख, घोड़े तोपें आदि अपने साथ ले गए। उन्होंने नाहन में एक स्थान पर किले का निर्माण किया और इसका नाम 'पांवटा नगर' रखा। 1690 ई. में बिलासपुर का राजा अपने पुत्र की बारात को लेकर श्रीनगर (गढ़वाल) पहुंचा। राजा फतेहशाह ने गुरु गोबिन्द सिंह को भी निमन्त्रण दिया। गुरु जी ने सोच विचार करने के उपरान्त अपनी उपस्थिति को उचित न समझ कर दीवाननन्द चन्द को सवा लाख का बहुमूल्य आभूषण तथा वस्त्र उपहार के रूप में देकर भेजा। नन्द चन्द जाते समय अपने साथ दो सौ सैनिक भी साथ ले गया। राजा फतेहशाह ने उसका स्वागत किया और पांवटा के शाही बाग में उनके ठहरने का प्रबन्ध किया।

राजा भीम चन्द इन उपहारों तथा तम्बू को देखकर जल-भुन गया और उसी समय राजा फतेहशाह से कहने लगा कि गुरु गोबिन्द सिंह हमारा शत्रु है। यदि तुम उसके साथ सम्बन्ध बनाए रखोगे तो हम आपकी पुत्री का डोला यहीं छोड़ जायेंगे। वह गुरु जी से शत्रुता नहीं रखना

गुरु गोविंद सिंह तथा राजा भीम चन्द के संघर्ष का साक्षी बिलासपुर

● देवेन्द्र कुमार काश्यप

बिलासपुर अपनी प्राचीन परम्पराओं के कारण प्राचीन काल से ही अपना विशिष्ट स्थान बनाए हुए है। यह एक ओर तो ऊर्ध्वमुखी शृंखलाओं से लगा हुआ है तो दूसरी ओर समतल मैदानों के साथ जुड़ा हुआ है। यहां का परिवेश अत्यन्त विस्तृत घाटियों, नदियों, पहाड़ियों तथा समतलों में कटा-फटा होने के कारण बिलासपुरी जीवन में समानता और एकरूपता लाने के सद्‌प्रयत्नों में आज भी एक अवरोध बना हुआ है। बिलासपुर हिमाचल प्रदेश के दक्षिण-पश्चिम में स्थित है। यह उत्तर में जिला मण्डी तथा हमीरपुर, पश्चिम में जिला ऊना तथा पंजाब प्रदेश के जिला रूपनगर (रोपड़) दक्षिण तथा पूर्व में जिला सोलन के क्षेत्रों से जुड़ा है।

बिलासपुर रियासत के विलय से पूर्व समूचे क्षेत्र को "कहलूर" के नाम से जाना जाता था। इस रियासत का नामकरण 'कहलू' नाम के एक गूजर के नाम के साथ जोड़ा जाता है। कहलू गूजर नैनादेवी धार का निवासी था। कहा जाता है उसकी बांझ बकरी नैनादेवी के प्रभाव सेएक पत्थर पर दूध की धारें गिराती थी। जिसकी खबर उसने राजा वीरचन्द को दी और राजा वीरचन्द ने इसी के नाम पर अपनी रियासत का नाम कोटकहलूर रखा। नैनादेवी के नीचे गंगूवाल के समी राजधानी का स्मृति चिन्ह एक दुर्ग अब तक विद्यमान है। कोट कहलूर दुर्ग का आज भी पुलिस स्टेशन के रूप में प्रयोग किया जा रहा है। 1600 ई० के लगभग ज्ञान का लड़का बीक चन्द अपने पिता को छोड़ कर 'सुनहाणी' नामक गांव में चला गया। इसने अपने पिता के उपरान्त स्थान को रियासत की राजधानी बनाया। सन् 1654 में बीक चन्द के उत्तराधिकारी राजा दीपचन्द ने शतद्रु (सतलुज) नदी के बाऐं किनारे पर अपनी राजधानी बनाने के लिए स्थान का चयन किया। इस स्थान को व्यासगुफा' के नाम से पुकारा जाता है। 'बिलासपुर' शब्द को व्यासपुर का अपभ्रंश माना जाता है।

इस प्रकार से प्राचीनकाल में जिस रियासत का नाम 'कहलूर' रखा गया था, कालान्तर में उसकी राजधानी कोटकहलूर से बदल कर सुनहाणी में लाइ गई तथा उसके पश्चात् सन् 1654 में राजा दीपचन्द द्वारा शतद्रु के किनारे व्यासगुफा नामक स्थान के पास स्थापित किये गए नगर का

हरिचन्द कोपं कमाण सम्भारै। प्रथम बाजीयं ताण बाणं प्रहार।
द्वितीय ताक कै तीर मोको चलायं। रख्यो दैव में कान छवै के सिधायं।
तृतीय बाण मारयो सु पेटी मंझा रैं। विधिग्रं चिलकवं दवाल पारं पधारं।
चुभी चिचं चर्म कछू घाऊ न आयं। कलं केवलं जान दासं बचायं॥

(विचित्र नाटक पृ. 50)

दूसरे तीर के साथ गुरु जी ने राजा केसरी चन्द तथा राजा सुखदेव चन्द को घायल कर दिया। इन तीनों के गिरते ही पहाड़ी राजाओं की सेना में हलचल मच गई। ये राजा अपनी सेना सहित मैदान छोड़ कर भाग गए। फतेशाह भी भाग कर श्रीनगर चला गया। गुरु विलास में इस प्रकार चित्रित किया गया है :-

फतेहशाह भाजियो। घरं जा विराजियो।
नहीं बैन बोल। समा सोई टो लैं।

(गुरु-विलास-पृ0-158)

यह युद्ध 'भंगानी का युद्ध नाम से प्रसिद्ध है। इस युद्ध की विजय के उपरांत कहलूर में उन्होंने एक किला बनवाया, जिसमें उनके सैनिक शस्त्रों का अभ्यास किया करते थे। इसके सम्बन्ध में विचित्र नाटक में इस प्रकार लिखा गया है :

'युद्ध जीत आए जबै। टिके ना तिनपुर पांव।
कोहलूर में बांधिओ। आन आन आनन्दपुर गांव।

(विचित्र नाटक, पृ0 51)

राजा भीमचन्द ने गुरु जी के साथ दोस्ती का हाथ बढ़ाया और उसने कहा कि कोहलूर (कहलूर) रियासत उन्हीं की है. जहां चाहें वे अपना अधिकार कर सकते हैं :

तब राजन ऐसे कह्यो हाथ जोर तिह ठाम।
आदि अन्त महाराज को कोहलूर यह धाम।

(गुरु-विलास, पृ0 164)

पंजाब तथा दक्षिणी प्रान्त की गड़बड़ से औरंगजेब के प्रबन्ध को शिथिल जान कर पहाड़ी राजाओं ने भूमि कर (कुछ विद्वानों के अनुसार भूमि कर नहीं था, अपितु जजिया था) कई वर्षों तक अदा नहीं किया। औरंगजेब जब दक्षिण की ओर से निवृत हुआ तो उसने इनके विरुद्ध मियां खां तथा अलफखां को सेना लेकर चढ़ाई करने का आदेश दिया। जम्मू के वायसराय मियां खां ने अपने सेनापति अलिफ खां को राजा नाहन, राजा कहलूर (बिलासपुर), राजा नालागढ़ तथा राजा चम्बा के ऊपर आक्रमण करने का आदेश दिया। आलिफ खां सबसे पहले कृपाल कटोचिए के पास गया। उसने युद्ध के भय से काफी मात्रा में धन दिया और कहा कि बिलासपुर के राजा

चाहता था, लेकिन अन्त में विवश हो कर उसने उसका विरोध स्वीकार कर लिया। दीवान नन्द चन्द को जब इस बात की सूचना मिली तो उसने क्रुध होकर सैनिकों को आज्ञा दी, जिन्होंने ऐसी हल-चल मचाई कि सभी राजा चकित रह गए। विवाह कार्य सम्पन्न होने पर भीमचन्द ने सभी राजाओं से मिल कर योजना बनाई कि दलबल सहित उन पर आक्रमण कर दिया जाए। उधर दीवान नन्द चन्द ने गुरु जी से जाकर समस्त वृतांत को बता दिया।

राजा भीम चन्द, राजा कृपाल चन्द कठोजिया, राजा केसरी चन्द जस्सोवालिया, राजा सुख दयाल जसरूठिया, राजा हरिचन्द हण्डूरिया, राजा पृथ्वीपाल चन्द उडालिया तथा राजा फतेहशाह श्रीनगरिया आक्रमण में सम्मिलित हुए। ये सभी राजा दस हजार सैनिक लेकर चढ़ाई करने आये थे।

उधर गुरु गोबिन्द सिंह जी को भी इन राजाओं की कुमंत्रणा का आभास था। वे पांवटा से सात-आठ मील की दूरी पर 'भंगानी' नामक गांव के मैदान में सेना लेकर आ गया। इसके विषय में गुरु गोबिन्द सिंह जी ने 'गुरु विलास' में इस प्रकार लिखा है :—

जोजन एक पांवटे अग्ग अहैं भंगानी अभग ।। (पृ०-153) यमुना तथा गिरी नदियों के मध्य दोनों सेनाएं आ डटीं। दोनों सेनाओं में घमासान युद्ध आरम्भ हो गया। मार-काट का कोलाहल चारों ओर से सुनाई देने लगा। पहले दिन का युद्ध समाप्त हुआ। रात्रि छा गई। डरपोक कातरों के लिए अन्धकार युद्ध में से भागने में सहायक हुआ। अर्ध रात्रि के समय पांच सौ उदासीन जो बहुत दिनों तक गुरु जी के पास हलवा पूरी छक रहे थे, भाग खड़े हुए। गुरु जी के पक्ष को निर्बल जान कर काले खां आदि पठान भी, जो फकीर बुदुशाह की सिफारिश पर नौकर रखे गए थे, भाग कर श्रीनगर के राजा फतेहशाह के पास नौकर हो गए। जब इस बात का पता बुद्धशाह को चला तो वह उसी समय दो हज़ार सैनिक लेकर गुरु जी की सहायता के लिए आ गया। इनके आते ही युद्ध फिर तेज हो गया।

भाई जीतमल राजा हरिचन्द से और संगोशाह निजामत खां से युद्ध करने लगे। हरिचन्द के बाण से जीतमल मूर्छित हो गया, जिसे सिख उठा कर ले गए। संगोशाह ने भी युद्ध में वीरगति प्राप्त की। तब गुरु जी स्वयं मैदान में आए। पहाड़ी राजाओं की सेना गुरु जी के समक्ष अधिक देर तक नहीं ठहर सकी। काले खां और हटयार्त खां सरदार, जो नमक हरामी कर के शत्रु की सेना से मिल गए थे, महन्त कृपाल दास के हाथों मारे गए। प्रसिद्ध तीरंदाज राजा हरिचन्द युद्ध करने के लिए आगे आया। उसने तीन तीर निशाना बांध कर मारे। प्रथम तीर ने गुरु जी के घोड़े को घायल कर दिया, दूसरा गुरु जी के कान के पास से हो कर निकल गया। तीसरा उन की पेटी में लगा। इसके पश्चात् गुरु जी ने अपना वार सम्भाला और राजा हरिचन्द को ऐसे तीर का लक्ष्य बनाया कि वह वहीं धराशायी हो गया। जिसको विचित्र नाटक में इस प्रकार वर्णित किया गया है :

सिख धर्म आगे बढ़ सके। 'यह तथ्य बहुत कम लोगों को ज्ञात है कि गुरु जी ने कीरतपुर से कोई छः मील दूर नैना देवी पहाड़ी के समीप माखोवाल कस्बे में मयोड़ और लोधीपुर गांव की जमीन को बिलासपुर की रानी जलाल देवी, जो कि 'भीम चन्द की माता थी' से खरीदा था। उन्होंने इस स्थान पर एक नगर का निर्माण किया और इसका नाम अपनी माता 'नानकी' के नाम पर 'नानकी चक्क' रखा। कालान्तर में यही स्थान 'आनन्दपुर साहिब' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

राजा भीमचन्द युद्ध में सबसे आगे अपनी सेना को लेकर बढ़ा और राजा जसवालिया के साथ भाई उदय सिंह युद्ध करने लगे। इस प्रकार इन राजाओं ने जब आनन्दपुर पर आक्रमण किया था तो तीन लाख सेना थी लेकिन लौटते समय केवल एक लाख ही रह गई थी।

अपनी पराजय का बदला लेने के लिए इन राजाओं ने औरंगजेब को गुरु जी के विरुद्ध लिखा कि ये दिन-प्रतिदिन शक्तिशाली बनते जा रहे हैं। इसलिए इसका उपाय ढूंढना अनिवार्य है। औरंगजेब ने सय्याद खां को एक बड़ी सेना लेकर भेजा और मार्ग में पहाड़ी राजाओं की सेना भी मिल गई। लेकिन इस बार भी इनकी हार हुई।

औरंगजेब को जब युद्ध में पराजय का समाचार मिला तो उसने सरहिंद और लाहौर के गवर्नरों को लिखा कि वे पहाड़ी राजाओं की सहायता से गुरु जी पर आक्रमण करें। बिलासपुर के राजा अजमेर चन्द, कांगड़ा के राजा घमण्ड चन्द, जसपाल का राजा बीर सिंह और कुल्लू, क्योंथल, मंडी, जम्मू, नूरपुर, चम्बा, गुलेर, दरौली, डड्वाल के राजा सेना लेकर भीमचन्द के पास पहुंचे। अजमेर चन्द के नेतृत्व में पहाड़ी राजाओं की सेना ने आनन्दपुर को चारों ओर से घेर लिया। एक ओर सरहिन्द दूसरी ओर लाहौर तीसरी ओर दिल्ली की सेना और चौथी ओर पहाडी राजा थे। इस समस्त सेना ने आनंदपुर को चारों ओर से घेर लिया और चार-पांच दिन तक भयानक युदध चलता रहा। लेकिन इसका कोई परिणाम नहीं निकला। कहा जाता है कि एक दिन प्रात: काल जब गुरु जी एक उच्च स्थान पर विराजमान होकर की पगड़ी बांध रहे थे उसी समय राजा अजमेर चन्द ने गोलांदाज को आदेश दिया कि उस उच्च स्थल को गोले का निशाना बनाया जाए। अनेक गोले पड़ने पर भी गुरु जी का तो कुछ नहीं बिगड़ा लेकिन उन्होंने अपने तीरों से गोलांदाजो को अवश्य धराशाही कर दिया। आनंदपुर का कई दिनों तक घिरे रहने के कारण वहां आकाल पड़ गया। सेना, हाथी और घोड़े भूख से दुर्बल हो गए। कई सिख-सैनिक युद्धों से तंग आ कर गुरु जी का साथ छोड़ गए। गुरु जी के पास केवल चालीस सिख रह गए। 15 माघ संवत् 1761 को गुरु जी ने आधी रात को आनदपुर से प्रस्थान कर दिया;

संवत सत्रह सहससुभधि। माघ इकाहठ भयो सयुद्ध
तब करुणा निधि किओ पियाना। सुखसिंह सुनियो इम काना।

(गुरु-विलास, पृष्ठ 419-420)

भीमचन्द से अधिक कर लेना, क्योंकि वह सब पहाड़ी राजाओं में अधिक धनवान है।

बहुत काल इह भांति बितायो, मीयां खान जम्मू कह आयो।
अलफ खान नादौन पठावा। भीमचन्द तन बैर बढ़ावा।

आलिफ खां ने जब भीम चन्द से जजिया मांगा तो उसने जजिया देने की अपेक्षा युद्ध करना उचित समझा :

नहीं दाम देना, सिर जुद्ध लीना। (गुरु-विलास, पृ0-165)

राजा भीमचन्द ने युद्ध की तैयारी आरम्भ कर दी और इस युद्ध के लिए गुरु गोबिन्द सिंह जी से सहायता के लिए याचना की। युद्ध में भीमचन्द की सेना की विशेष हानि हुई, जिससे राजा हनुमान का जाप करने लगा।

'तबै भीमचन्द कियो कोपु आप। हनुमान के मंत्र को मुख जापं॥

(विचित्र नाटक, पृ0-52)

उसी समय गुरु गोबिन्द सिंह उसकी सहातता करने के लिए आ गए। इस लड़ाई में यवनों की हार हुई और वे रण छोड कर भाग गए।

कुछ समय उपरांत यवनों ने पुनः आक्रमण किया और इस बार राजा भीमचन्द तथा अन्य पहाड़ी राजाओं ने गुरु गोबिन्द सिंह के विरुद्ध यवनों का साथ दिया। राजा भीम चन्द को गुरु जी का शक्तिशाली बनना पसन्द नहीं था इसलिए वह छोटी-छोटी बातों पर गुरु जी के साथ टकराव की नीती अपना रहा था। गुरु जी घास तथा लकड़ियों की जरुरत पूरी करने लिए बिलासपुर रियासत के जंगलों पर निर्भर करते थे। यहीं से इनका आपसी मतभेद बढ़ता-बढ़ता यहां तक बढ़ गया कि ये आपस मेंएक दूसरे के शत्रु बन गए। जब राजा भीमचन्द से नहीं रहा गया तो उसने अन्य पहाड़ी राजाओं को पत्र लिख कर उकसाया कि गुरु गोबिन्द सिंह भी औरंगजेब की भांति उनके हिन्दू धर्म का विरोधी है। क्योंकि यह दिन-प्रतिदिन अपनी शक्ति बढ़ाता जा रहा है। सभी जाति के लोगों को मिला कर सेना का संगठन कर रहा है। जबकि यह कार्य केवल राजपूत जाति का ही है। इस प्रकार यह समाचार मिलते ही सभी पहाड़ी राजा जिनमें-जम्मू, नूरपुर, मण्डी, कुल्लू, चम्बा, गुलेर, डढवाल तथा श्रीनगर (गढ़वाल) के राजा अपनी-2 सेनाएं लेकर भीमचन्द के पास बिलासपुर में पहुंच गए। इन सभी राजाओं के साथ मंत्रणा करने के उपरान्त भीमचन्द ने गुरु गोबिन्द सिंह को पत्र लिखा कि वह इस जमीन का उन्हें कर अदा करें अन्यथा आनन्दपुर को छोड़ दें, क्योंकि यह भूमि आपके पिता जी को रहने के लिए दी थी न कि राज्य स्थापित करने के लिए। यह भूमि गुरु गोबिन्द सिंह जी के पिता गुरु तेगबहादुर ने किरतपुर के निकट स्थायी निवासी के लिए खरीदी थी। इसी के सम्बन्ध में कनिंघम ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'सिखों के इतिहास' में लिखा है-गुरु तेग बहादुर ने यह अनुभव कर लिया था कि मुगल शासक की साम्प्रदायिक एवं असहिष्णु नीति के कारण सिख धर्म के प्रचार के लिए किसी सुरक्षित स्थान को केन्द्र बनाया जाना चाहिए जिससे

दरबार बाबा सुथरे शाह, ज्वालामुखी के महन्त बाबा श्री जीवन शाह जी से हुई भेंट वार्ता के आधार पर

सुथरा सम्प्रदाय

● पृथुराम शास्त्री

भारत में साधुओं के अनेक संप्रदाय हैं। इन के प्रवर्तक अतिमानव महा पुरुष ही हुए हैं। उन में सुथरा सम्प्रदाय भी एक है। उस के अनुयायी साधु अपनी तेजस्विता, तिकड़म, दुराग्रह, अक्खड़पन, प्रत्युत्तरपटुता, मसखरापन और चमत्कारिता के लिए प्रसिद्ध हैं। आज भी सुथरा नाम सुनते ही श्रोता के मन में जुगुप्सा, भयमिश्रित आशंका और चमत्कारिकलामय, कौतुक के प्रति उत्कण्ठा आदि के मिश्रित भाव उद्‌भूत होने लगते हैं। ये साधु जिसके सामने हाथ पसारदें वह चुपचाप उन्हें कुछ न कुछ देकर हम से अपना पल्ला छुड़ाना चहता है।

सुथरा का समोचारित शब्द खुसरा भी है। खुसरा समुदाय नर-नारीत्व से विहीन केवल मात्र कलीब है। उस में साधुत्व नाम मात्र को भी नहीं है और इसका दुराग्रह अपनी चरम सीमा का उल्लंघन कर निर्लज्जता को छू जाता है। उक्त दोनों समुदायपु त्रजन्म एवं विवहादि शुभावसरो पर बधाई के रुप में धन-वस्त्र आदि पाना अपना अधिकार समझते हैं। इसी अधिकार की लेकर दोनों समुदायों में संघर्ष और अदालती कारवाई भी सुनी जाती है। बधाई के रुप में रुपये एवं वस्त्रादि मिलने पर खुसरा समुदाय तो वर्णनातीतनिर्लज्जता की सीमा का भी अतिक्रमण कर जाता है

बाबा जलज्योति शाह

इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक बाबा जलज्योति शाहजी हुए हैं। बात उन दिनों की है जब भारत पर सम्राट औरंगजेब का शासन था। सम्राट हिन्दुधर्म के विनाश के लिए कटिबद्ध और हिन्दुओं के बलात धर्मपरिवर्तन के लिए कुख्यात था। शाही आदेश से हिन्दुत्व के प्रतीक यज्ञोपवीत को बलात् काट डाला जाता था और तिलक को जिह्वा से चाट लिया जाता था। उस संकट काल में एक ऐसे महापुरुष ने जन्म लिया जिसने अपनी चमत्कारिता से औरंगजेब को भी अभिभूत किया, अपनी मान्यता के अनुसार विजित किया, प्रशास्तपूर्ण अधिकार पत्र लिया और बादशाह के समकक्ष 'शाह' की पदवी भी पाई।

पहाड़ी राजाओं को जब ज्ञात हुआ कि गुरु जी ने दोनों किले खाली कर दिए हैं तो उन्होंने गुरु जी का पीछा करने के लिए चारों ओर अपनी सेनाएं भेजीं। लेकिन गुरु गोबिन्द सिंह तथा अजीत सिंह तब तक सरसा नदी पार करके रोपड़ (रूपनगर) पहुंच चुके थे।

इस प्रकार से बिलासपुरी राजा भीमचन्द तथा उसके उपरांत उनका पुत्र अजमेर चन्द अन्य पहाड़ी राजाओं की सहायता से गुरु जी के साथ लड़ते रहे, लेकिन गुरु गोबिंद सिंह जी तो धर्म परायण थे जिस बात को सम्भवतया ये लोग नहीं समझ पाये और विदेशी यवनों के साथ मिल कर गुरु गोबिंद सिंह जी की मनोभावना को न समझते हुए स्वयं ही अपने आप डरते रहे और गुरु जी से द्वेष रखते रहे। इसका कोई भी लाभ इनको प्राप्त नहीं हुआ। बिलासपुर का राजा तो यह दावा करता रहा कि आनन्दपुर की भूमि उसकी रियासत का अंग है, जिसे वह गुरु जी के उपरांत भी प्राप्त नहीं कर सका और व्यर्थ में ही गुरु गोबिंसे जी के साथ बैर-विरोध बढ़ाता रहा। इन राजाओं ने यदि गुरु गोबिन्द सिंह जी का साथ दिया होता, तो विदेशी इस देश पर नहीं ठहर पाते।

क्वाटर न. २८-,ए सैक्टर १४
चण्डीगढ़-१६००१४

शिष्य बना लेने की स्वीकृति दी। सुथरा जलज्योति दिल्ली से बारह साल के बाद लौटे थे।

दिल्ली में पहुंच कर जलज्योति ने जामा मस्जिद और लाल किले के बीच अपना डेरा जमा लिया। सुथरे ने सर्व प्रथम मोची से सवा हाथ लम्बा एक जोड़ा जूती का, सुनार से चान्दी का एक लोटा और एक थाल बनवाये। उन सभी पर कीमती मणियां जड़वाई।

अगले दिन प्रात: ही जामामस्जिद में चान्दी के थाल में रखी, सवा हाथ लम्बी तथा रत्नों जड़ी एक विचित्र जूती का दायां पैर, और पानी से भरे चान्दी के लोटे को देख कर आश्चर्य भरी खलबली सी पैदा हो गई। सभी उन्हें देखने के लिए उधर ही भाग निकले। प्रधान मौलवी ने उन विचित्र वस्तुओं को अच्छी तरह देख भाल कर निर्णय दिया कि यह जूती साधारण तो क्या असाधारण मानव की भी नहीं हो सकती। यह तो अल्लाताला की ही हो सकती है। अल्ला ताला 'आबे हयात' (पवित्र पानी) लेकर हमें निहाल करने आये थे और 'आबे हयात' से भरा लोटा यहां छोड़ गये। निशानी के तौर पर अपने पैर का एक जूता भी रख गये। यद्यपि मौलवी का यह फ़तवा निराकारवादी इस्लाम की परम्परा के विरूद्ध था तोभी उत्सुक जनसमूह 'आबे हयात' पर टूट पड़ा। बात फैलती-फैलती शाही महल में जा पहुंची। सम्राट् स्वयं भी 'आबे हयात' से निहाल होने के लिए मस्जिद में पंहुचे।

उधर बाजार में एक साधु सवा हाथ लम्बी जूती का बायां पैर अपनी लाठी पर टांग कर कहता फिर रहा था कि मेरा पेशाब से भरा लोटा और जूती का एक पैर कोई चुरा कर ले गया है। जो सुनता था वही ग्लानी से भर कर चुप रह जाता था। यह चर्चा भी होने लगी कि लम्बी जूती का एक पैर और लोटा बौणे सन्त का है, खुदा ताला का नहीं।

चर्चा सुनने के बाद बादशाह के बुलावे पर सुथरा जलज्योती दरबार में जा पंहुचे। उस समय उन्होंने सूअर की आन्त का बना यज्ञोपवीत और मलका तिलक धारण किया था और मुंह भी काला किया था। यज्ञोपवीत और तिलक को देख कर बादशाह जल भुन गया। सुथरे को काफिर कह कर उसका यज्ञोपवीति अपने दान्तो से काट डाला और तिलक जिह्वा से चाट लिया। प्रश्न किया- 'रे तुम्हारा पैर तो छोटा सा है, फिर तुम कैसे कहते फिर रहे हो कि तुम्हारा गुम हुआ जूता यही है" ? सुथरे ने उत्तर दिया "ऐ जहान के मालिक! मौत से बड़ी सजा तो और कोई नहीं? अगर यह जूता मेरे पैर में न आए तो मुझे तत्काल सजा दे देना"। पैर में डालने पर जूता एक अंगुलकम ही निकला। बादशाह औरंग (नवरंग) जेब नौ सिद्धियों कलाओं का मालिक था। इस चमत्कार से वे सारी की सारी प्रभावहीन हो गईं। उसे इस तिकड़मी चमत्कार को देख कर सुथरे को करामाती महापुरूष मानना पड़ा। सुथरे के अनुरोध पर सभी सन्त महात्माओं को कैद से छोड़ना पड़ा। बादशाह ने सुथरा जलज्योति के एक प्रशस्तिमय अधिकार पत्र जिस में हर दुकान से एक पैसा और शादीवाले घर से एकटका और रुपया बधाई पाने का अधिकार दिया गया था, दिया तथा अपने समकक्ष 'शाह' की उपाधि से विभूषित किया। उसी दिन से सुथरा सम्प्रदाय के आदि प्रवर्तक

सोहलवीं शताब्दी के अन्त में जिला गुरदासपुर, पंजाब के बहरामपुर गांव में बिहारी लाल नन्दा के घर एक बालक ने जन्म लिया। जन्म के समय ही नवजात बालक के मुंह में बत्तीस के बत्तीस दांत और चेहरे पर दाढ़ी,-मूछ निकली हुई थी। इस विचित्र बालक को देखकर सभी अनिष्ट के भय से आतंकित हो गये। किसी ने भूत कहा तो किसी ने प्रेत या राक्षस। सारे समाज ने एक मत से यही निर्णय किया कि इस अशुभ एवं अनिष्टकारी बालक को घर से बाहर कहीं जंगल में इसके भाग्य के भरोसे छोड़ दिया जाए ताकि घर और गांव का कोई अनिष्ट न होने पाए। अनिष्ट के भय से आशंकित माता-पिता को भी यह निर्णय मानना पड़ा।

नवजात बालक को रावी नदी के किनारे एक झाड़ी में रख दिया 'जाको राखे सांईया मारि सके न कोय' के अनुसार अब प्रभु ही उसका रक्षक था। संयोग से तभी उस रास्ते से गुरु श्रीहर गोबिन्द जी महाराज अपनी संगत के साथ वहीं आ निकले। बालक को देखकर रुके। उन्होंने अपनी अन्तर्दृष्टि से भांप लिया कि यह बालक होनहार और महातपस्वी है। जब गुरु जी को यह अनुमान हुआ कि इस कुरूप बालक को अनिष्टकारी, अमंगलकारी अशुभ एवं गन्दा समझ कर ही छोड़ा गया होगा, तब उन्होने ऊंचीं आवाज से पुकारा "यह बालक गन्दा नहीं, सुथरा मगलकारी है। सभी वोलो "सुथरा-सुथरा।" संगत ने भी सुथरा-सुथरा कह कर स्वीकार कर लिया। सुथरा-सुथरा की आवाज से वातावरण गूंज उठा। रावी के जल प्रवाह के निकटस्थ होने के कारण बालक को 'जल ज्योति' नाम से संस्कृत किया और अपने साथ ही ले लिया।

बड़ा होने पर जब बालक सुशिक्षित एवं प्रबुद्ध हो गया तब उसके मन में आया कि चलो, दिल्ली में जा कर उस बादशाह औरंगजेब को नीचा दिखाएं जो हिन्दुओं के धार्मिक अधिकारों को छीन कर उनके यज्ञोपवीत काट रहा है और तिलक चाट रहा है।

महात्मा जल ज्योति गुरुद्वारा गोइन्दवाल से दिल्ली की ओर चल पड़े और चलते-चलते पटियाला जा पहुंचे। वहां पण्डित रजाल जी रामायण की कथा किया करते थे उनके कथा सुनने जलज्योति जी भी चले गये। कथा वाचक पण्डित जी उस दिन नई जूती पहन कर आये थे और उसे दरवाजे से बाहर उतार कर अन्दर कथा करने बैठे थे। कथा करते-करते भी वे दरवाजे पर उतारी अपनी नई जूती को थोड़ी-थोड़ी सी देर के बाद बार-बार निहारते जाते थे। महात्मा जलज्योति ने कथावाचक की इस दुविधाभरी व्यस्तता को लक्ष्य करके एक पद कह दिया।

कथा में तथा भई सुरत रह गाई जूती।
बाह्मण बेचारा क्या करू जे जुती लेजाऊ कुत्ती॥

कथावाचक रजाल उक्त पद को सुन कर उन्हें अन्तर्यामी महापुरूष समझ कर उनके पैरों में पड़ गया और शिष्य बना लेने की प्रार्थना की। महामा सुथरे ने दिल्ली से लौट कर परसों तक उसे

सोमसी

शाहजी को देखते ही सूबा बौखला गया और वटवृक्ष को काट डालने का आदेश दे डाला। वृक्ष के तने पर कुल्हाड़ी की चोट पड़ते ही वहां से खून रिसने लगा। इस अनहोने चमत्कार से बट वृक्ष का काटा जाना बन्द कर के सूबे ने पूछा "तुम कौन हो" उत्तर मिला "मैं बादशाह हूं"। पुनः प्रश्न हुआ "किसे मानते हो"? जवाब था "अल्लाताला को"। पुनः प्रश्न उभरा "कैसे मानें"? इस प्रश्न का मौखिक उत्तर न देकर शाह जी ने एक ओर से नंगे होकर अपने शरीर में लगी दो गुप्तेन्द्रियां दिखादीं। इन में से एक सुन्नता (मुस्लिम संस्कार विशेष वाली थी और दूसरी बिना सुन्नत (हिन्दुओं जैसी) थी। इस अनहोनी को देख कर सूबा स्तम्भित था। शाह जी द्वारा यह चमत्कार दिखाने का सही उद्देश्य था कि ये नादान। हिन्दू और मुस्लिम! दोनों एक ही परमेश्वर की सन्तान हैं, इन दोनों सम्प्रदायों में वह समान रुप से विद्यमान है। इनका परस्पर विरोध प्रभु (खुदा) की इच्छा के विपरीत है।

उक्त चमत्कार से अभिभूत सूबाने हिन्दू समुदाय को उसका छीना हुआ पूजा-पाठ का अधिकार पुनः दे दिया और सुथरा दरबार के लिए कुछ भूमी किले के अन्दर भी दी एवं शाह जी को सवा-लाख रुपये का चोला बनवा कर भेण्ट किया। अब शाह जी स्वतंत्र हो कर वहीं तप करने लगे। बारह साल की सतत तपस्या के पश्चात भगवती महाकाली ने स्वयं प्रकट होकर इन्हें लकड़ी के दो छोटे-छोटे डण्डे उपहार दिये। इन्हीं डण्डों को सम्प्रदाय का गुरु रक्षक मानने का आदेश भी दिया। बधाई एवं दक्षिणा लेते समय आज भी सुथरे साधु अपनी झोली से निकाल कर उन्हें बजाते हुए "बोल धर्म की जय" का उच्चारण करते हैं।

इस प्रकार इस सम्प्रदाय के बाबा जल ज्योति शाह को श्री गुरु हर गोबिन्द से सम्प्रदाय का नाम सुथरा, टोपी तथा सैली (गले में पहनने की काली डोर), सम्राट औरंगजेब से शाह की उपाधि और तृतीय महन्त बाबा झैंगड़शाह को भगवती काली से सम्प्रदाय की रक्षार्थ दो डण्डे प्राप्त हुए हैं। यह टोपी और काली डोर आज भी सुथरा दरबार, जमना बाजार दिल्ली में सुरक्षित हैं। पहनने का चोला, काली डोर, दो छोटे डण्डे और झोली इन्हें गुरु परम्परा से प्राप्त होते हैं। चोला और काली डोर और डण्डों वाली झोली डालकर कोई भी साधु किसी भक्त के घर कुछ भी खाता पीता नहीं।

आज इस सम्प्रदाय के 19वें प्रधान महन्त 139 वर्षीय श्री सोहन शाह जी प्रधान दरबार दिल्ली की गद्दी पर विराजमान है। हर वर्ष भाद्र पद कृष्ण अमावस्या के दिन बाबा झैंगड़शाह जी की जयन्ती के उपलक्ष्य में एक विशाल समारोह का आयोजन होता है। उस दिन समाधी पर निकाली वट वृक्ष की तीन कोपलें भी दिखाई देकर समा जाती है। आज से 25-30 वर्ष पूर्व महन्त शाह जी महाराज अपने भक्तों की सहायता से चौथे करामाती महन्त श्री झैंगड़शाह की समाधी के अवशेषों को लाहौर से दिल्ली लाये थे और जमना बाजार दिल्ली के दरबार में उन्हें पुनः स्थापित किया था। यहां दरबार का मुख्य भवन वैष्णव धर्म के देवी-देवताओं के चित्रों से अलंकृत है। दरबार का प्रबन्धक एक पंजीकृत ट्रस्ट है। मानसिक शान्ति के लिए सम्प्रदाय की कवितामयी रचनाओं के साथ-साथ रामायण पाठ भी दरबार का दैनिक कृत्य है। इसके अतिरिक्त

बाबा जलज्योति के साथ 'शाह' विशेषण भी जुड़ गया। आज भी इन अलमस्त साधुओं को 'शाह' जी कह कर ही पुकारा जाता है। उक्त शाही अधिकार पत्र आज भी जमना बाजार के दरबार में सुरक्षित बताया जाता है।

एक बार बाबा जलज्योति शाह गुरु गोरख नाथ जी की मूर्ति के दर्शन करने के लिए गोरख टीले पर गये। वहां उनका शिष्य समूह झण्डा चढ़ाने में व्यस्त था पर झण्डा चढ़ने में नहीं आता था। नाथों ने नवागन्तुक शाह जी को झण्डा दे कर उसे ध्वज-स्तम्भ पर चढ़ा देने का आदेश दिया शाह जी सभी के देखते-देखते स्तम्भ पर चढ़ गये और झण्डे के स्थान पर अपनी लंगोटी को खोल कर चढ़ा दिया और झण्डा लंगोट के स्थान पर बान्ध लिया और उतर कर एक दम गायब हो गये तथा क्रुद्धनाथ समूह देखता ही रह गया। उस आक्रुष्ट वातावरण में यदि शाह जी गायब न होते तो नाथ मण्डली अमर होने की कामना से उन्हें तत्काल ही खा जाती।

इस प्रकार सुथरा सम्प्रदाय मुसलमान से जूती की, नाथ सप्रदाय से लंगोटी की पूजा और हिन्दु समाज से धर्म की जय के नाम पर एक पैसा तथा एक रुपया (वर्तमान में पच्ची सतक भी) आज तक लेता चला आ रहा है।

उधर पटियाला में पं, रजाला तप करता करता वामी (वाल्मीक) बन गया था। जलज्योति शाह ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार बारह बरस (परसों) के पश्चात दिल्ली से लौट कर उसे समाधि से जगाया और यथाविधि दीक्षा देकर शिष्य बना लिया। रजाल शाह को ब्रह्मा के पुत्र नारद मुनि का अवतार माना जाता है। शिष्य बनने पर अब इनका नाम बाबा रजाल शाह हुआ। ये इस सम्प्रदाय के दूसरे महन्त थे। इनके प्रथम शिष्य और सम्प्रदाय के तीसरे महन्त बाबा कंगाल शाह जी महाराज धर्म प्रचार के लिए काबुल की ओर चले गये और उधर ही समा गये। कन्धार में इनकी समाधि आज भी सुरक्षित है।

सुथरा सम्प्रदाय के चौथे महन्त और बाबा रजाल शाह के दूसरे शिष्य बाबा झंगड़ (झोगड़) शाह जी हुए। इन्हे भैरव का अवतार माना जाता है। इस सम्प्रदाय के साधुओं का जुगुप्सित एवं अनहोना चमत्कार करने में ख्यात होना ही इसका कारण रहा होगा। बाबा झंगड़ शाह भारत के प्रमुख तीर्थों की यात्रा के पश्चात पंजाब लौटे। राजधानी लाहौर में भरत्ती दरवाजा के बाहर और किले के पास एक ऊंचे टीले पर इन्होंने तीर्थ यात्रा से लाये हुए वट वृक्ष का रोपण किया और वहीं डेरा जमा दिया। यह पेड़ अब भी वहीं पर हरा-भरा है। उसी वट वृक्ष के कारण इन्हें बाबा बोड़ां वाला भी कहा जाता है। उनदिनों लाहौर के सूबा (गवर्नर) के आदेश से हिन्दुओं के सार्वजनिक रूप से पूजा पाठ करने और घण्टा शंख नाद करने के धार्मिक अधिकार छीन लिये गए थे। बाबा झंगड़ शाह ने पूजा आरती के पश्चात जोर की शंख ध्वनि की। बस फिर क्या था। सूबा के कानों में शंख ध्वनि पड़ी कि शाह जी को बुलावा आया। कई सन्देश वाहक भेजने पर भी जब शाह जी न मिले, तब सूबा स्वयं चल कर वहां आया। शाह जी अपने आसन पर विराजमान थे।

सैण धार की प्रसिद्ध देवी मां मनसा

●प्रेमलाल गौतम आचार्य

हिमाचल प्रदेश प्राकृतिक सुषमा का सुखद एवं नयनाभिराम निकेतन है। इसके गगन चुम्बी हिम मंडित शैल शृंखलाएं, कल-कल, छल-छल कलोल करती हिम सरिताएं, कांय-कांय के गीत गाते तथा नृत्य करते सघन अरण्य, वाद्य-वादन में दक्ष खग-समुदाय सभी कुछ देखकर मानव मन्त्र मुग्ध एवं अवाक् रह जाता है।

हिमाचल प्रदेश का जनपद सिरमौर (सिर का मुकुट) है। यहां की प्राकृतिक सुषमा भी प्रदेश के इतर स्थानों से कम नहीं है। इस जनपद को यदि धारों का जनपद कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। इस जिला के पूर्वोत्तर में स्थित है आकाश चुम्बी चूड़धार जो भगवान शंकर की निवास स्थली है तथा सिरमौर व शिमला जिला की विभाजक रेखा है। इसी की क्रोड में हाब्बन, दीदग, नौहराधार, घण्डूरी, चाड़ना हरीपुर धार, कोरग आदि सुन्दर स्थान स्थित हैं। इस मण्डल के मध्य में सैणधार है जो जिला सोलन के ओच्छघाट से लेकर ददाहू (रेणुका) तक फैली है। तीसरी धार धारठीधार के नाम से प्रसिद्ध है जो कुमारहट्टी से लेकर सुदूर पांवटा (दून क्षेत्र) तक फैली है। इसी धारठीधार के नीचे किन्नी धाड़ का क्षेत्र पुकारा जाता है। गिरि नदी इसी जिला के मध्य से कृषकों का उपकार करती हुई प्रवाहित होती है। टौंस व यमुना नदी सिरमौर व उत्तर प्रदेश के छोरों को चूमती हुई बहती है।

इन्ही प्राकृतिक आकर्षक स्थलों में सैणधार का प्रसिद्ध स्थल 'मानरिया' नामक है। सैणधार की अधित्यका छोटे-छोटे ग्रामों से सुसज्जित है। मानरिया के आस पास मड़ीधार व बान्दली छोटे-छोटे गांव स्थित हैं। मानरिया गांव के नामकरण के विषय में जन कथन है कि माता मनसा देवी की प्रतिमा किसी पूर्वज ने मनी-माजरा नामक स्थान से लाई थी जिससे इस स्थान का नाम मानरिया पड़ा। इसी कथानक के साथ यह स्थली मन हरिया-अर्थात मन को हरण करने वाली कही जाये तो अन्योक्ति न होगी। यहां एक प्राथमिक शिक्षालय भी है जिसमें गांव के बच्चे शिक्षा ग्रहण करते हैं। इस स्थान से पूरे सिरमौर के क्षेत्र को देखा जा सकता है। मौसम के साफ होने पर पंजाब, हरियाणा, देहरादून, सोलन, शिमला, नाहन, चूड़धार के पार्श्ववर्ती क्षेत्रों को देखा जा सकता

यह गौरी शंकर तथा हनुमान जी के भव्य मन्दिर भी हैं।

सम्प्रदाय की अद्भुत परम्पराएं किसी भी दरबार के महन्त द्वारा निर्वाण प्राप्त करने पर उसके द्वारा मनोनीत एवं दीक्षित शिष्य ही महन्ताई का अधिकारी होता है। शिष्य द्वारा निर्वाण प्राप्त गुरु के पार्थिव शरीर पर या पास बैठ कर बताशों का शर्बत पीना आवश्यक है। इस परम्परा का उद्देश्य गीता द्वारा प्रतिपादित सुख दुख में उद्वेग रहित समस्थिति प्राप्त करना ही रहा होगा।

पार्थिव शरीर का अन्तिम संस्कार यथावत् अग्नि द्वारा ही किया जाता है। पुनः चौथे दिन भस्मीभूत शरीर की पांच अवयवास्थियों के साथ उसी की विभूति का एक गोला बनाया जाता है। उसको यथाविधि जीवन दान देकर समाधि में स्थापित किया जाता है।

जिस समाधि में पंचावयवों सहित विभूति का बना गोला जीवन दान के पश्चात तीन फुट की दूरी से स्वयंमेव उछल कर समाधि में चला जाए उसी की पूजा करने का विधान है। अन्य का नहीं। अविवाहित या विधुर द्विज ही शिष्य एवं महन्त बनने का पात्र होता है।

यह सम्प्रदाय भगवती काली को अपने अंग-संग मानता है। लोक चर्चा भी है कि सुथरेशाह अपने जीवन का विश्वास नहीं करता और एक रोटी पका कर उसे पहले खा लेता है फिर दूसरी पका कर खाता है। सम्प्रदाय का एक पद :-

अख फड़कनी न मिले, मुंह बिच रहे गराह।
लख लानत भई सुथरया, जे दमदा करे बसाह॥

अर्थात् अपने जीवन को क्षण भंगुर समझो और प्रभु भजन में देर मत करो। उक्त चर्चा का आधार अर्थ का अनर्थ ही है।

अन्य सूक्तियां—

मनमोहन मन में बसे, मूरख ढूंढे न जाय जिनका मन सुथरा हुआ वे घर माहीं पाय।

सुथरे शाह सत्संग का सीख भजन की रीत फिर पछताए क्या बने जब समय जाएगा बीत॥

अरदास—राजा राज करे परजा सुखी बसो साध का संग गुरमुख का मेल।

भजन का परताप दुःख क्लेश का नाशा भड़े सो अड़े शरण पड़े सोत रे।

डेरा बस्ती आबाद रहेलोह-लंगर चलते रहें। जहां तहां फकीर मर्दों के धरने लगे हैं।

वहां वहां सहायता करना, मुश्किल आसान करना।

गो ब्राह्मण की वृद्धि धर्म की जय-जय कार जंजू टिक्के की लाज पंथ का वादा

अमृत समय की अरदास तेरे सच खण्ड में प्रवाण

प्राणी मात्र का हो कल्याण।

साधु आश्रम,
होशियारपुर-146021

हैं। रात्रो को शिमला, चण्डीगढ़, नाहन नथा हरियाणा के कुछ विशेष स्थलों को भी जगमगाती बिजली को लक्ष्य कर देखा जा सकता है। इस स्थान के लिए जाने को चारों ओर से चढ़ाई लगती है। सवार, मड़ीघाट, पराड़ा, पनवाली इन स्थानों से यह मानरिया जगह लगभग तीन चार किलो मीटर की चढ़ाई का रास्ता है।

सैणधार में अन्य धारों की अपेक्षा सबसे अधिक पानी है। नाहन शहर के लिए पेयजल की व्यवस्था इसी धार के सवार नामक स्थान से की गई है। सहित्यकार डा० एम.डी. डिमरी का कथन है कि इस धार की हरियाली व सर्वाधिक जल स्त्रोतों से यह निर्विवाद है कि यह भू-खण्ड समुद्री स्थल रहा हो। हरे-भरे घास की हरित परिधान ओढ़े सैण रानी दर्शकों व पर्यटकों को मन्त्र मुग्ध करती आई है। चीड़,देवदार, बरास, बान, थमेयो, अर्थयो, मरमल, दशुनयो के वृक्षों से सुसज्जित यह स्थल अतीव रमणीय प्रतीत होता है। अनेकों आयुर्वेदिक औषधियों का भी यहां अक्षय भण्डार है। बूटी विशेषज्ञों का कथन है कि इस स्थल में ऐसी जड़ी बूटी भी है जिसको सांप के काटे जाने पर पिलाने से वमन क्रिया द्वारा जहर निकाला जा सकता है। सघन वन होने से यहां भालू, चीता, (बाघ) घोल, बन्दर, घोली, हरिण, बारासींगे, खरगोश, ककड़ आदि जंगली जानवर स्वतन्त्र रूपेण विचरण करते हैं। यहां का एकान्त शान्त परिवेश एवं स्थान की सुन्दरता देखते ही बनती हैं—शूरू (धूरों) के असंख्य पेड़ ऐसे प्रतीत होते हैं मानों शिव के असख्य त्रिशूल हों, बड़ी-बड़ी पाषाण शिलाएं मानो अनेक अहिल्याओं का रहस्य लिए हों। शेषनाग की तरह फण फैलाए चूड़धार नगाधिराज का भांति विराजमान हो, मधुर क्रीड़ा करते पक्षियों में मानो बाल्मीकि के क्रोच पक्षी भी हों जिनकी भाव विह्वलता से उनमें कवित्व का संचार हुआ, यहां की पर्वत कन्दरायें मानो हमारे पूर्वज ऋषि मुनियों की तपोभूमि का वस्तुत: आभास करवा रही हो। गिरि गह्वरो के समीप का हरा भरा घास "आस्वाद वांद्भ कवलैस्त्रिणानां' शब्दों के द्वारा मानो दिलीप और नन्दिनी का स्मरण करवा रहा हो। धारठी धार पर अस्त होता सूर्य मानों 'घण्टामाघ' का स्मरण करवा रहा हो। इन सारे दृष्टान्तों से प्रतीत होता है कि यह हिम भूमि नि:सन्देह देवी-देवताओं, ऋषि मुनियों पीरो फकीरों, सन्तों कवियों, लेखकों एवं प्रकृति प्रेमियों की तपोभूमि व कर्म भूमि रही है, जिनकी अतीव प्राचीन कल्पनाओं को आज भी हम अनेक दृष्टान्तों से साकार देख कर अपने को कृतकृत्य समझते हैं।

मानरिया मड़ीवार व बान्दली गांव के लिए पेयजल की व्यवस्था भूतपूर्व एवं प्रथम मुख्यमन्त्री, मान्य डॉ. वाई. एस. परमार के वागथन के समीपस्थ मड़योग नामक ग्राम से 'धीमतलाणा नामक परियोजना के नाम से की गई है। यह व्यवस्था ग्रीष्मकाल के लिए उत्पन्न जल संकट को देखकर की गई है। यद्यपि इस पर्वत की अधित्यका पर पानी के एक दो स्रोत भी हैं परन्तु यह ग्रीष्म के कभी-कभार सूख जाते हैं। इसी धार की गोदी में महीपुर नामक जगह है, जहां का बासमती चावल प्रसिद्ध है। इसके अति रजोली के नींबू, केले, अमरूद, आम भी प्रसिद्धि प्राप्त हैं। यह सभी कुछ पानी की अधिकता होने के कारण ही सम्भव है। मानरिया के आलू, सेब, अखरोट अन्य क्षेत्रों से बहुत अच्छे होते हैं।

माता मनसा देवी के नामकरण के विषय में कुछ तथ्य अधोवर्णित हैं।

१. ब्रह्मा ने देवी का मन से सृजन किया, अतः मन से प्रकट होने के कारण मनसा कहलाई।

२. यह कश्यप की मानसी कन्या है, मन में क्रीड़ा करने के कारण मनसा देवी प्रसिद्ध हुई।

३ जो मनसा (मन से) ईश्वर का ध्यान करती है, वह मनसा देवी कहलाती है।

४. जरत्कारू ऋषि की पत्नी जरत्कारू (तपस्या के द्वारा क्षीण शरीर वाली) मनसा देवी के नाम से विख्यात हुई।

५. दुर्गा सप्तशती में भी कई स्थानों पर शब्दान्तर से मां मनसा का उल्लेख हुआ है—कवच में सिद्धिदात्री, वृष वाहिनी तथा तन्त्रोक्त में 'मन: रूपेण संस्थिता' कहा गया है।

६. महाभारत देवी भागवत शतरूद्र संहिता आदि में भी मनसा माता का सविस्तृत उल्लेख है जिस का संक्षिप्त विवरण अग्र वर्णित है।

सामान्य सा अर्थ है कि मनसा, अभिलाषा, इच्छा, कामना, याचना, प्रतिज्ञा, चाह को पूर्ण करने वाली भगवती का नाम मां मनसा विख्यात है। माता मनसा के प्रारम्भिक स्वरूप के विषय में विचार अपेक्षित एवं प्रसंगानुरूप है —

शतरूद्र संहिता में एक आख्यान इस प्रकार मिलता है – आयुर्वेद साहित्य के प्रसिद्ध वैद्य-विशाद आचार्य धन्वतंरि को शंकर भगवान की स्तुति करने से नाना विधा औषधियों की शक्तियों का वरदान प्राप्त था। इसीलिए उन्हें देवताओं के वैद्यराज की माननीय उपाधि मिली थी। एक बार आचार्य धन्वतंरि अपने अनेक शिष्यों सहित अपने आराध्य देव आशुतोष जी के पास कैलास जा रहे थे। मार्ग में अनेकों विषैले सांप मिले जिनमें से तक्षक नाग आचार्य को काटने आगे बढ़ा। आचार्य की ओर बढ़े इस सांप को देखकर इनका अनन्य शिष्य दम्भी कहने लगा—अरे नीच! तू हमारे गुरुदेव के गुणों से अपरिचित है। इधर आ पहिले हम से निपट ले। दम्भी ने मन्त्रोच्चारण किया तथा सभी सांपों को तक्षक सहित निर्जीव कर दिया। कुछ दूर भय से कांपते कुछ सर्प नागलोक में जाकर वासुकि जो नागाधिराज हैं को समाचार सुनाने गए। क्रोधावेश में वासुकि ने द्रोण, कालिय, कर्कोटक, पुंडेरीक, धनञ्जय नामक अतीव विषधर सांप, जिनकी फुंकार से पाषाण भी जल कर राख हो जाते थे, उन्हें धन्वतंरि व उनके शिष्यों से प्रतिशोध लेने भेजा। इस सर्प समूह पर धन्वतरि के शिष्यों का तनिक प्रभाव नहीं चला तथा वे बेहोश गिर पड़े। ऐसी स्थिति देख आचार्य धन्वतरि अपने अराध्य शिव का स्मरण कर मन्त्रोच्चारण करने लगे। एकाएक पीयूष वृष्टि होने लगी। मृत शिष्यों के मुख में जब अमृत-बूंदे पड़ी तो वे जीवित हो उठे। आचार्य के मन्त्रों से सभी सांप मूर्च्छित हो गये। इस घटना की सूचना लेकर एक दो सांप जब नागलोक पहुंचे तो वासुकि नागलोक की अखिल प्रतिष्ठा धूमिल होते देखकर बहुत चिन्तित हुए। क्षणभर सोचकर वासुकि अपनी बहिन मनसा को स्मरण करता है तथा कहता है – आप सर्वशक्ति

सम्पन्न हो। नागों के इस संकट का उन्मूलन कर उनकी सहायता करो। भाई की आज्ञा को स्वीकार कर मनसा धन्वतंरि व उनके शिष्यों को समाप्त करने चली। पर्वत पर पहुंच मनसा धन्वतंरि से इस प्रकार कहती है-अरे सिद्ध पुरुष तुम्हें अपनी शक्ति पर बहुत घमंड है, तुम नागों के शत्रु गरुड़ के भी शिष्य हो, भगवान रूद्र तुम्हारे आराध्य हैं। तुमने नागों की जो दुदर्शा की है, मैं उस का प्रतिशोध लेने आई हूं। मनसा कमल का फूल धन्वतंरि की ओर फेंकती है। मन्त्र शक्ति से पुष्प अग्नि की भयवाह लपटों में परिवर्तित हो गया तथा लपटें आचार्य की ओर बढ़ने लगी। आचार्य धन्वतरि ने भी मुट्ठी धूल की मन्त्र पढ़ कर उस जलते फूल की लपटों पर दे मारी। फूल एकाएक राख बन कर पृथ्वी पर गिर पडा। अब मनसा अनेकों विषैले नागों से गुंथा हुआ नागपाश धन्वतंरि पर चलाने लगी। आचार्य धन्वंतरि ने गरुड़ का स्मरण किया। गरुड़ ने आकर तुरन्त नागों को चोंच मारकर समाप्त कर दिया। हार को सम्मुख देख कर मनसा विचलित थी। मनसा को स्मरण आया कि उन्हें शिवजी ने प्रसन्न हो कर अमोघ शूल दिया था। एकाएक मनसा ने वह शूल हाथों में उठा लिया। इस शूल-प्रहार से बचना आचार्य को मुश्किल था। मनसा इस शूल को आचार्य पर फेंकना ही चाहती थी कि भगवान शिव व ब्रह्मा जी मध्यस्थ आ कर खड़े हो गये। शिव व ब्रह्मा को बीच में खड़े देखकर मनसा का हाथ रुक गया। मनसा व धन्वंतरि ने दोनों को प्रणाम किया। ब्रह्मा ने कहा—आप दोनों भगवान शिव के भक्त हैं। आचार्य धन्वंतरि देवताओं के वैद्य हैं तथा इनका जीवन परोपकार के लिए है। आप देवीस्वरूप मनसा है। मनसा अपनी गलती पर पश्चाताप करती है। शिव के आदेशानुसार आचार्य धन्वंतरि मनसा जी से क्षमा मांगता है। मनसा आचार्य को क्षमा प्रदान करती है। बाद में ब्रह्मा जी कहते हैं-आज से सांपों की देवी मनसा जी होंगी तथा वह देवी बनकर अखिल विश्व में पूजी जायेगी। तदन्तर ब्रह्मा जी के आर्शीवाद से सभी सांप पुनः जीवित हो गये। मनसा सांपों सहित अपने भाई वासुकि के नागलोक लौटी। यह तो मनसा मत के देवी शक्ति प्राप्त करने की गाथा है।

इसी के साथ देवी भागवत में मां मनसा के सम्बन्ध में निम्न श्लोक मिलता है :

जरत्कारू जगद्गौरी मनसा सिद्धि योगिनी,
वैष्णवी नाग भामिनी, शैवी नागेश्वरी तथा
जरत्कारू प्रिया आस्तीक माता विष हरेति च
महाज्ञान युता चैव सा देवी विश्व पूजिता ॥

(देवी भागवत महापुराण स्कन्ध ६, अध्याय ४८)

ये बारह नाम इस प्रकार हैं :-

१ जरत्कारू : जरत्कारू ऋषि के तुल्य जिसने अपने स्व शरीर को तपस्या करने से क्षीण काय बना दिया हो।

२. जगद्गौरी : ऐसी सुन्दरी और मनोहर देवी जिसकी पूजा अन्तरिक्ष, स्वंग, मर्त्य, एवं पाताल लोकों में होती है।

३ मनसा :- यह देवी कश्यप ऋषि की मानसी कन्या है। मन से क्रीड़ा करने के कारण मनसा देवी के अभिधान से अधिक प्रसिद्ध है। मनसा (मन से) ईश्वर का ध्यान-मनन करती है।

४ सिद्धयोगिनी : मनसा ने तीन युगों तक कठिन तपस्या की। शिवजी से सिद्धयोग प्राप्त होने से यह महाज्ञान, योगदायक, मृत संजीवनी महाविद्या आदि नामों से सिद्धिप्राप्त है।

५ वैष्णवी : अत्यन्त विष्णु भक्ति से वैष्णवी विख्यात हुई।

६ नागभामिनी : वासुकि की भगिनी होने से नागभामिनी बनी।

७ शैवी : शिव की शिष्या होने के कारण शैवी कहलाई।

८ नागेश्वरी : जनमेजय के यज्ञ में इसके पुत्र आस्तीक ने नागों की रक्षा की थी अतः नागेश्वरी नाम से भी विख्यात हुई।

९ जरत्कारू प्रिया : महर्षि जरत्कारू का अपने ही नाम की पत्नी जरत्कारू (तपस्या से क्षीण) वासुकि की बहिन मनसा से विवाह होने से जरत्कारू प्रिया कहलाई।

१० आस्तीक माता : जरत्कारू ऋषि के साथ पाणिग्रहण करने से आस्तीक की उत्पत्ति हुई अतः चारों वेदों के ज्ञाता तपस्वी, आस्तीक की श्रेष्ठ माता होने का भी गौरव पाया।

११ विषहरी : विष का हरण करने से विषहरी प्रसिद्ध हुई।

१२ महाज्ञान युता : मनीषि इसे महाज्ञानवती कहते हैं। महाज्ञान से युक्त होने के कारण यह देवी विश्व में पूज्या है।

मनसा भगवती के सम्बन्ध में देवी भागवत में इस प्रकार वर्णित है—मानव नागों से व्याकुल होने पर कश्यप की शरण गये। ब्रह्मा सहित कश्यप ने मन्त्रों का निर्माण किया तथा वे मन्त्र ब्रह्मा के उपदेश से विषहरी मन्त्र बने। मन से सृजन करने पर यह देवी मनसा के नाम से अभिहित हुई। कैलाश पर्वत पर मनसा देवी ने पूर्णभक्ति पूर्वक पूजन कर आशुतोष को प्रसन्न किया। सहस्त्रों वर्षों की तपस्या से प्रसन्नचित्त शिव ने मनसा को सामवेद का ज्ञान, अष्टाक्षरों का कल्पतरू कृष्णमन्त्र त्रैलोक्य मंगल कवच एवं पूजन क्रम भी बताया। तीन वर्षों तक पुष्कर तीर्थ पर मनसा ने कृष्ण की आराधना की तथा कृष्ण के दर्शन प्राप्त किये। तप से क्षीण शरीर वाली मनसा को देख कर श्रीकृष्ण ने इन्हें जरत्कारू की संज्ञा दी। कश्यप मुनि नागों व मनुष्यों के पूजन से यह त्रिलोकों में पूजित कहलाई। कश्यप ने मनसा का विवाह जरत्कारू से किया। जरत्कारू के त्याग देने पर शोकाकुल मनसा को माता पार्वती समझाती है। बाद में मनसा के द्वारा आस्तीक का जन्म होता है। तीन लाख वर्षों तक आस्तीक शिव प्रदत्त महामन्त्र का जप करता है। माता मनसा सहित जब आस्तीक अपने नाना कश्यप के घर लौटता है तो इस खुशी में कश्यप असंख्य ब्राह्मणों को ब्रह्मभोज करवाता है। दोनों चिरकाल तक कश्यपाश्रम में रहते हैं। ब्राह्मणों के शाप से बहुत प्रयत्नशील राजा परीक्षित को तक्षक नाग डस लेता है। परीक्षित के पुत्र जनमेजय ने पिता के संस्कार करवाये तथा सर्प सत्र यज्ञ किया। सर्प यज्ञ में सांपों का समूह नष्ट होने लगा। भयभीत होकर तक्षक इन्द्र के पास पहुंचा। यज्ञ के ब्राह्मण तक्षक के विनाश के उपाय सोचने लगे। इन्द्र देवता और ब्राह्मण

मिलकर मनसा के पास गये तब माता की आज्ञा से आस्तीक ने तक्षक के प्राणों की याचना की। तब राजा ने ब्राह्मणों के परामर्श से तक्षक को अभय दान दिया। इन्द्र ने किस प्रकार मनसा को प्रसन्न किया ? ऐसा नारद जी के पूछने पर नारायण भगवान पूजा विधि का वर्णन करते हैं। इस कथानक से निष्कर्ष रूप में मां मनसा को महिमा का वर्णन प्राप्त होता है। "ॐ ह्लीं मनसा देव्यै स्वाहा" इस दशाक्षर मूलमन्त्र का पूजन विधान है।

महाभारत के आदिपर्व में भी सूतनदन शौनक के पूछने पर जरत्कारू ब्रह्मचारी के साथ मनसा का विवाह तथा इनके संयोग से उत्पन्न आस्तीक द्वारा जनमेजय के यज्ञ में तक्षक की प्राण रक्षा का विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है। इस कथानक द्वारा कृशाङ्गी मनसा का विवाह, पुत्रोत्पति तथा भाई वासुकि के मनोरथ को पूर्ण करने का लिलत चित्रण है।

पूर्वोक्त कुछ प्रमाणों के आधार पर यह निर्विवाद है कि मां मनसा का ऐतिहासिक महत्व भी अतीव गरिमामय रहा है। विपत्ति के समय प्रत्येक जनमानस की कामना को पूर्ण कर उसे प्रफुल्लित तथा चकित किया है। माता मनसा के सम्बन्ध में अन्य अनेक ग्रंथों में भी महात्म्य वर्णित है।

सैणधार का यह मनसा माता का प्रसिद्ध मन्दिर सवार नामक स्थान से सीधे लगभग तीन किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। मन्दिर को जाने के लिए सवार और मड़ीवाच से दो रास्ते हैं। अन्य रास्तों से मड़ीधार वाला रास्ता सरल- सीधा एवं नाना लता पादपों की छाया से युक्त है। नीचे से देखने पर ऐसा प्रतीत होता है कि मन्दिर बिल्कुल धार के ऊपर स्थित है तथा इसके आस-पास बैठने के लिए मानो बिल्कुल भी जगह न हो। परन्तु ऐसा नहीं, ऊपर बहुत ही समतल भूमि है, जहाँ स्थानीय लोग कृषि बागवानी इत्यादि करते हैं।

मानरिया, मड़ीधार तथा कैंथधार इन तीनों गांवों में माता के तीन मन्दिर हैं। यह सही रूप में तथा निश्चित नहीं कहा जा सकता कि इन मन्दिरों की स्थापना कब हुई और किसने की। इस विषय में स्थानीय एक दो वृद्धों के साथ साक्षात्कार[1] से प्रचलित जन धारणाएं इस प्रकार हैं। कोई निर्दोष महत्व दुर्भाग्य से जेल में बन्द कर दिया गया था। उसने माता मनसा जी का हृदय में सच्ची भावना से स्मरण किया। मां ने स्वप्न में उससे कहा कि मैं तुझे मुक्त कर दूंगी। जेल की शलाकाएं आपको स्वतन्त्र कर देंगी, तू मुझे किसी ऊंचे पर्वत पर ले जाकर बसा दे। एकाएक उसका स्वप्न टूटा और उसके जेल के बन्धन स्वतः ही टूट गये। उसने मां की पाषाण प्रतिमा उठाई और हिमभूमि की ओर चला। कहते हैं सवार से ऊपर जहां आज जन-सहयोग से मन्दिर बना है वहां प्रतिमा स्थिर हो गई। अधिक उठाने पर भी न उठी। इस तरह की किम्वदन्ति माता के आगमन की क्षेत्र में प्रचलित है।

मन्दिरों की प्राचीनता के विषय में जन विश्वास है कि ये स्थापनाएं लगभग तीन चार सौ वर्ष प्राचीन है। अब इन तीन मन्दिरों में से दो का निर्माण नवीन शिल्प विधि के आधार पर है।

1-श्रीयुत ब्रह्मदत्त जी मनरहाल, ग्राम-कोट, जिला सिरमौर।

मानरिया का प्रसिद्ध मन्दिर दस फुट ऊंचा तथा 6×6 का लम्बा चौड़ा है। नीचे से परिक्रमा का व्यास 7×7 है। यह दो मंजिल का है परिक्रमा से ऊपर छोटा सा आंगन है। आंगन से ऊपर की मंजिल की ओर छोटी-छोटी पांच पौड़ियां हैं। मन्दिर का द्वार पूर्व दिशा की ओर है। उत्तर पश्चिम दिशा की ओर मन्दिर की मंजिल तीन फुट की ऊंचाई पर सीमेन्ट की बनी सैल्फ के ऊपर-प्रधान मूर्ति सहित छोटी-छोटी सोलह सतरह पीतल की मूर्तियां हैं। बड़ी मूर्ति अष्टधातु की बतलाई जाती है। सभी प्रतिमाएँ बौद्धकालीन प्रतीत होती है। मन्दिर सीमेन्ट, शरिया, पत्थर, लकड़ी का बना है। मन्दिर के ऊपर पीतल का कलश है। मन्दिर के साथ ही पानी का नल है जहां भक्त पादप्रक्षालन इत्यादि करते हैं। नीचे के कक्ष में हवन-कुण्ड है जहां नवरात्रों के अवसर पर दुर्गा सप्तशती का पाठ तथा हवन इत्यादि किया जाता है।

पूर्व की ओर निर्मल जल की वापिका है। इस स्रोत का पानी अतीव निर्मल व शीतल है। जन-कथन है कि इतनी ऊंचाई पर जल का स्रोत निकलना मां मनसा की अनन्य कृपा-प्रसाद का परिचायक है।

मानरिया से उत्तर की ओर इसी पर्वत की अधित्यका पर छोटी सी बस्ती महीवार में भगवती का बहुत प्राचीन मन्दिर बना है। यह मन्दिर गुम्बजनुमा है। मन्दिर का दरवाजा पूर्व की ओर है। मन्दिर बड़ी-बड़ी पाषाण चट्टानों का बना है। मन्दिरों से बाहर प्रांगण में हवन-कुण्ड बना है। मन्दिर की ऊंचाई दस फुट है तथा वर्गाकार इसकी लम्बाई चौड़ाई 5×5 की है। मन्दिर के अन्दर पाषाण की पांच छ: प्रतिमाएं हैं। यह मूर्तियां बहुत प्राचीन प्रतीत होती हैं। इन मूर्तियों में पश्चिम की ओर से प्रथम गणेश की मूर्ति फिर वृषवाहिनी अष्टभुजाधात्री मां मनसा की मूर्ति तथा तीन अन्य मूर्तियां हैं। इन मूर्तियों की कला बौद्ध-कालीन प्रतीत होती है। शिल्पकला का अद्वितीय नमूना देखते ही बनता है। इस मन्दिर के ऊपर कलश की स्थापना नहीं है। इसी मन्दिर के थोड़ा ऊपर पर्वतीय टीले से पूरे सिरमौर को देखा जा सकता है। यहां का घास प्राय: वर्ष भर हराभरा रहता है। मौसम की आर्द्रता का ही यह परिणाम है कि पानी सिन्चाई के लिए न मिलने पर भी फसलें अपेक्षाकृत अच्छी होती हैं। आलू और मक्की के खेत इस मन्दिर के प्रांगण से ही आरम्भ हो जाते हैं।

माता मनसा देवी की विशेष स्थापना का तीसरा मन्दिर कैंथघाट नामक स्थान पर अभी-अभी तैयार हुआ है। जन-धारणा है कि इस स्थान पर सर्वप्रथम भगवती की पाषाण-प्रतिमा (पिण्डी) लाई गई थी। भगवती के चढ़ावे की राशि में से ग्यारह हजार रुपये की राशि इस मन्दिर के निर्माण में लगाई गई। अभी तक इस नव-निर्मित भवन प्रतिष्ठा नहीं की गई। प्रतिष्ठा के समय मूर्तिस्थापना आदि की योजना है। इन तीनों मन्दिरों में अभी तक मानरिया के मन्दिर में ही विद्युत की व्यवस्था है। कई प्रधान मन्दिर (मानरिया में ही) भगवती मां मनसा के चरणों में

अपने श्रद्धा-प्रसून अर्पित करते हैं। विशेष अवसरों पर ही लोग मड़ीधार एवं कैंथघाट के मन्दिरों में जाते तथा पूजा इत्यादि करते हैं। तीनों मन्दिर माता मनसा जी के नाम से विख्यात हैं तथा तीनों में मां मनसा का ही प्रभुत्व है।

यहां पशु बलि (बकरा बलि) भी दी जाती है। कई बार तो कुछ एक स्वार्थी लोग पशु बलि की अनिवार्यता बना देते हैं। परन्तु अधिकतर माता मनसा जी के चरणों में पूरी-प्रसाद तथा दूसरे मीठे यज्ञ इत्यादि देकर माता को प्रसन्न करते हैं। पहले माता की प्रतिमा के ऊपर गणिते (पुजारी) बकरों को काटते थे। इसका सर्वप्रथम व सफल विरोध ग्राम कोट के पं० माताराम जी मनरहाल तथा पं० ब्रह्मदत्त जी मनरहाल (ग्राम कोट निवासियों) ने किया। ग्राम कोट वाले हिंसा के बिल्कुल विपक्ष में हैं। यहां देवताओं के निमित्त शादी या माङ्गलिक कार्यों में पशु बलि (बकरा बलि) बिल्कुल सख्त वर्जित है।

मन्दिर की राशि का दुरुपयोग न हो इस बात को मद्य नजर रखते हुए स्थानीय समिति का विधिवत् गठन किया गया है। पूजा कार्यभारी लोगों द्वारा अनुमोदित तथा भगवती द्वारा स्वीकृत पुजारी जिसे स्थानीय बोली में गणिता कहते हैं, होता है। गणिता (पुजारी) वही हो सकता है जिसमें माता मनसा की हवा आती हो। मन्दिर का पूर्ण दायित्व इसी के हाथों होता है। सर्व प्रथम इस मन्दिर का जो सफल और सच्चा पुजारी रहा है उसका नाम पं० माताराम ग्राम मानरिया ही है जो अभी तक वृद्धावस्था में है (जीवित है)। उसके बाद बालाराम ग्राम बान्दली भी गणिता रहा। इनके बाद टीका राम ग्राम मानरिया को यह कार्यभार सौंपा गया परन्तु लोगों के कथनानुसार भगवती के प्रकोप से यह भी अकाल काल कवलित हो गया। इस समय कार्यवाहक पुजारी गंगाराम भाट को नियुक्त किया गया है। वैसे तो प्राय दिन ही दर्शनार्थी मन्दिर जाते रहते हैं परन्तु हरियाली साजी, बैशाखी, लोहड़ी, दीपावली, नवरात्रों तथा संक्रान्ति आदि विशेष पर्वों के दिनों मन्दिर में अधिक भीड़ रहती है तथा बहुत सा चढ़ावा अनाज एकत्रित होता है। मन्दिर की राशि अथवा अव्यवस्था फैलने (राशि का दुरुपयोग) वाले पुजारी को तत्काल हटा दिया जाता है।

संगधार के क्षेत्र में माता मनसा की महती प्रतिष्ठा है। लोगों की जनधारणा है कि जब-2 उन्हें किसी प्रकार का भी संकट उनके जीवन में आया तत्काल मां मनसा का हृदय से स्मरण करके मन वाञ्छित फल की प्राप्ति की है। इस प्रकार की असंख्य जन श्रुतियां क्षेत्र में प्रचलित हैं। क्षेत्र के ही लोग नहीं प्रत्युत सुदूर दिल्ली तथा अन्य दूर दराज के लोग अपनी मनोकामना के पूर्ण होने पर यहां मां के चरणों में आते हैं। अधिकतर भक्त तो वे हैं जो पहले निःसन्तान थे तथा बाद में मां के आशीर्वाद से सन्तान पाकर मां के आजीवन कृतज्ञ एवं प्रशंसक बन गए। सन्तान के लिए तो दूर दराज से मां की शरण में पूर्ण भक्ति सहित आते हैं।

कृषि का अच्छा बुरा होना, रोग महामारी, मुकद्दमा, दूसरे अनेक सामाजिक कार्यों की सफलता और असफलता भगवती के प्रसाद व प्रकोप का फल समझा जाता है।

इस क्षेत्र में माता के विषय में अनेक जन श्रुतियां प्रचलित हैं। उनमें से माता के प्रसाद व प्रकोप का क्रमशः एक-एक उदाहरण देना यहां पर्याप्त होगा। नाहन शहर के एक धनाढ्य सेठ ने सैणधार की उपत्यका में स्थित ग्रामनैली में सेठ चावला ने ज़मीन खरीदी थी। ज़मीन कुछ उनके अनुकूल न रही। कहते हैं[1] किउनके माता-पिता ने उस जगह को दान देने की योजना बनाई। अब यह जगह किसी सुपात्र को दान देनी थी। चावला ने कई जगह इस विषय में प्रयास किए। अन्त में वह रेणुका के श्रीयुत सुन्दर मणि जी निर्वाण मुनि के पास इस आशय से गए। वीतरागी मुनि पहिले तो इस सम्पत्ति को लेना स्वीकार ही नहीं कर रहे थे परन्तु जब चावला सेठ ने बहुत आग्रह किया तो उन्होंने कहा ठीक है पहले मैं उस जगह को भगवान परशुराम व सैणधार की भगवती मां मनसा को सौंप लूंगा तब उसका ग्रहण करूंगा। ऐसा ही किया गया रेणुका से भगवान परशुराम जी को लाया गया तथा सैणधार की प्रसिद्ध मां मनसा को भी विधिवत् लाया गया। जब विविवद्र मुनि ने जमीन का धार्मिक कृत्य से हस्तांतरण कर लिया और देवते अपने-अपने स्थान लौट रहे थे उसी समय ग्राम कुज्यों का खेत के सूरत राम जो कि उस समय लगभग 65 वर्षों की अवस्था में था निःसन्तान होने से दुःखी सादर रास्ते में खड़े होकर प्रार्थना करने लगा हे मां! जिस सच्ची भावना से भगवान परशुराम को रेणुका से लाया गया तथा अपको आपके निवास मानरिया से यहां लाया गया यदि आपकी अनुकम्पा से अगले वर्ष मेरे पुत्र हो जाए तो मैं आपको भक्ति सहित अपने घर बुलाऊंगा। कहते हैं अगले वर्ष उसके यहां लड़का हुआ तथा बाद में उसने दोनों (परशुराम व मां मनसा को) अपने घर पर आमन्त्रित किया। इस प्रकार के अनेकों उदाहरण क्षेत्र में प्रचलित हैं।

दूसरा उदाहरण माता के प्रकोप का है। अभी दो तीन वर्षों पूर्व क्षेत्र के भक्त जन विद्युत विभागीय कर्मियों सहित सवार से मानरिया मन्दिर के लिए विद्युत की व्यवस्था कर रहे थे। कहते हैं[1] इस मन्दिर में जबराते का आयोजन था, अतः बिजली का होना अनिवार्य था। दौड़धूप से तथा सहायक अभियन्ता (विद्युत) बागथन के अथक प्रयत्नों से बिजली लगाने की पूर्ण प्रक्रिया आरम्भ कर दी थी। इस पुनीत कार्य में ग्राम मानरिया का टीकाराम जिसकी अवस्था लगभग 45 वर्ष की तथा वह भगवती का गणिता (पुजारी) भी था उसकी इस कार्य में रुचि न थी। वह चाह रहा था कि इस कार्य का श्रेय औरों को जा रहा है अतः यह बिजली का कार्य नहीं होना चाहिए था। कहते हैं कि पूर्ण स्वस्थ होते हुए भी भगवती के प्रकोप से एकाएक मृत्यु को प्राप्त

1 प० ब्रह्मदत्त मनरहाल ग्राम कोट, जिला सिरमौर (हिमाचल प्रदेश)
1 केदार दत्त जी ग्राम कोट जिला सिरमौर (हिमाचल प्रदेश)

हो गया। इसी प्रकार एक बार जब भगवती के सोने चांदी की सामग्री बेचते हुए आदमियों को पुलिस ने पकड़ा तो किसी जग्गू पहलवान ग्राम पराड़ा के झूठी गवाही देने पर वह भी एकदम मर गया था। इस तरह की कई जनश्रुतियां क्षेत्र में व्याप्त हैं। इससे सिद्ध होता है कि कुपित होने पर यह भगवती क्षणभर में मानव अभिमान को मर्दित कर देती है।

ऋगवेद के श्रद्धा सूक्त तथा धार्मिक अनेक ग्रन्थों के अध्ययन करने से मानव में ईश्वर या दैवीशक्ति के प्रति श्रद्धाभावना स्वतः ही जागृत हो जाती है। पाषाण प्रतिमा में जब जनमानस की श्रद्धा व अटल विश्वास जागृत हो जाता है तो उसमें भी देवत्व शक्ति का संचार हो जाता है। अन्त में देवी भागवत में वर्णित इन्द्र ने देवी मनसा मां की पूजा करते कहा है :-

अहं करोमि त्वत्पूजां प्रीति वर्धतां सदा।
नित्या यद्यपि पूज्या त्वं सर्वत्र जगदम्बिका।।

(हे देवी जगदम्बिके ! मैं आपका पूजन करता हूं। इस कर्म में सदैव मेरी प्रीति बढ़े। आप नित्य स्थित रहने वाली की सर्वत्र पूजा होती है।)

राजकीय संस्कृत महाविद्यालय
नाहन, (हि० प्र०)

कुल्लू के ऐतिहासिक लोकगीत

● ऊषा

लोक साहित्य में लोकगीतों की प्रचुरता पाई जाती है। लोकगीतों में लोक जीवन की संगीतमय अभिव्यंजना दृष्टिगोचर होती है। इनमें सम्यता व संस्कृति की दिव्य झांकी प्रस्तुत होती है। लोक-गीतों के माध्यम से जनजीवन स्वयं बोलता, हंसता गाता, रोता और सिसकता हुआ लगता है। भावुक मन में पालत लोकगीत सच्चे अर्थों में जीवन के गीत हैं।

कुल्लू मनाली अपनी स्वप्निल दृश्यावली तो प्रस्तुत करती ही है साथ ही लौकिक-अलौकिक देवी देवताओं, ऋषि मुनियों और कई सिद्ध पुरुषों की पालकियों में स्थित विशिष्ट आत्माओं की ओर भी आगन्तुकों का ध्यान आकर्षित करती हैं। चलती फिरती इन पालकियों की मूर्तियों में रहस्य के कई आवरण छिपे हुए हैं और सबसे बड़ा रहस्य यह कि आदि काल में कब, किसने और कहां से देवी देवताओं की आराधना का सूत्रपात इस रूप में किया।

हिडिम्बा एक ऐतिहासिक पात्रा है। महाभारत में तथा हिन्दुओं के पूजनीय ग्रन्थ गीता में जिस भीम का वर्णन आता है, देवी हिडिम्बा उसी भीम की पत्नी तथा घटोत्कच की माता है।

इसी ऐतिहासिक पात्रा देवी हिडिम्बा का मन्दिर पर्वतीय क्षेत्र कुल्लू के पास मनाली में ढूंगरी नामक गांव में बना है। हिडिम्बा माता को स्थानीय भाषा में हिड़मा भी कहा जाता है। यह ऐतिहासिक मन्दिर चारों ओर से देवदार के ऊंचे-ऊंचे पेड़ों से घिरा हुआ अति मनोरम लगता है। मन्दिर के सामने दरिया व्यास का बहता पानी तथा उस पानी की कल-कल की ध्वनि मन मोह लेती है।

मां हिडिम्बा के पुजारी के अनुसार इस मन्दिर की कहानी इस प्रकार है। एक बार पाण्डव घूमते फिरते वरणावत नगर के समीप एक घने जंगल में पहुंचे। यह स्थान मनाली के निकट ढूंगरी का जंगल था। उन दिनों यहां एक मानवभक्षी राक्षस हिडिम्ब रहता था। उसने अपनी बहिन हिडिम्बा के साथ सारे इलाके में हाहाकार मचाया हुआ था और कोसों दूर तक मनुष्य तो क्या पशु पक्षियों तक को नष्ट कर दिया था। पाण्डवों के इस जंगल में आने पर हिडिम्ब को मानव गन्ध आ गई और उसने अपनी बहिन हिडिम्बा को मानव को मार कर लाने को कहा। भाई के आदेशानुसार हिडिम्बा मनुष्यों की तलाश में निकल पड़ी। पास ही हिडिम्बा ने देखा

एक आदमी बड़े आराम से टहल रहा था। यह आदमी भीम था जो अपने सोये हुए भाइयों का पहरा दे रहा था। हिडिम्बा भीम को देख कर भीम के रूप यौवन में मुग्ध हो गई तथा उस से प्रेम अलापने लगी। हिडिम्बा भीम को मारना ही भूल गई। हिडिम्बा तो प्रेम भावना में खो गई पर इधर हिडिम्ब को बहुत भूख लगी हुई थी। हिडिम्बा को काफी देर तक इन्तजार करने के बाद हिडिम्ब संदेहवंश कि बहिन पर कोई कष्ट न आ पड़ा हो, निकल पड़ा परन्तु जब हिडिम्ब ने हिडिम्बा को भीम के साथ प्रेम मुद्रा में देखा तो गुस्से से आग बबूला हो गया। भीम तथा हिडिम्ब का द्वंद्व युद्ध हुआ जिसमें हिडिम्ब धराशायी हुआ।

पाण्डव कुछ देर यहां ठहर कर आगे निकल गए और हिडिम्बा को वहीं छोड़ दिया। इसी हिडिम्बा ने एक बेटे (घटोत्कच) को जन्म दिया। फिर बाद में हिडिम्बा व घटोत्कच अब भी नरभक्षी राक्षस थे। घटोत्कच हर रोज मां के लिए मनुष्य मार कर भोजन के लिए लाता था। एक बार घटोत्कच मनुष्य को साथ लिए मां के पास आ रहा था कि रास्ते में वह मनुष्य जिसका नाम मध्यम था प्यास का बहाना कर भाग निकला तो घटोत्कच ने ज्योंहि मध्यम को पुकारा संयोग-वश पाण्डव उन्हीं दिनों पुनः एक बार उधर घूम रहे थे। भीम यह आवाज सुन कर घटोत्कच के पास आया क्योंकि भीम का नाम मध्यम भी था तो घटोत्कच उसे मां के पास शिकार बना कर ले गया। ज्यों ही हिडिम्बा ने भीम को देखा पहचान गई व घटोत्कच को बताया कि यही घटोत्कच के पिता हैं। यह सुन घटोत्कच भीम के पांव पर गिर पड़ा तथा क्षमा मांगने लगा। तब तक भीम के अन्य भाई भी वहां पहुंच गए। पाण्डवों को हिडिम्बा और उसके पुत्र के अत्याचारों पर बहुत क्रोध आया परन्तु वह दोनों पाण्डवों के अनुनय, विनति करने लगे। युधिष्ठिर ने तब उन्हें इस शर्त पर क्षमा कर दिया कि हिडिम्बा भविष्य में राक्षसी रूप छोड़ कर मानव कल्याण का कार्य करेगी। हिडिम्बा और घटोत्कच ने यह शर्त मान ली। तब से हिडिम्बा का राक्षसी रूप देवी रूप में बदल गया। घटोत्कच ने सुखी और शांतमय राज्य स्थापित किया। घटोत्कच ने महाभारत युद्ध में पाण्डवों का साथ दिया और लड़ाई में कर्ण ने जो तीर अर्जुन के लिए सुरक्षित रखा था वह उसे घटोत्कच पर चलाना पड़ा तथा इस तरह घटोत्कच पाण्डवों की विजय का कारण बना। तब भगवान कृष्ण ने भी हिडिम्बा को वरदान दिया कि यदि वह मनुष्य का दमन छोड़कर कल्याण का कार्य करे तो वह न की देवी केवल रूप में पूजी जाएगी वरन् उसमें ऐसी शक्ति होगी कि जिस पर उसकी दया दृष्टि होगी उसे कोई नहीं मार सकेगा। हिडिम्बा ने वैसा ही किया। ढूंगरी मनाली के आस-पास के क्षेत्र में सुखशान्ति फैल गई। हिडिम्बा अभय-प्रदा बनी। मरने के बाद हिडिम्बा देवी बनी और समय-समय पर बाप के कुल्लू राजाओं की सहायता करती रही।

मां हिडिम्बा कुल्लू के राजाओं और देवताओं की दादी कहलाती हैं। यद्यपि कुल्लू का प्रसिद्ध दशहरा श्री रघुनाथ जी की अध्यक्षता में होता है परन्तु जब तक देवी हिडिम्बा उपस्थित न हो

तब तक दशहरा के पहले दिन रघुनाथ जी की यात्रा प्रारम्भ नहीं होती और न ही इसके बिना दशहरा का समापन समारोह आयोजित होता है। माता हिडिम्बा की स्तुति में एक लोकगीत प्रचलित है :

देवी हिडिम्बा देऊआ—देवी री रानी
देवी हिडिम्बा देऊआ देवी री रानी।
ढुंगरी मन्दर तेरी जुग नशाणी
एक शोभा तेरी होरी बोणी।
दुनी ब्यासा रा पाणी।

किजां केरनू तेरी पूजा भक्ति,
गल किछनी जाणी।
आसे गभरू कलियुगा रे।
माता तू सियाणी।

तो बाभी भोले संसारा न,
कोस लाज बचाणी।
देवी हिडिम्बा देऊआ देवी री राणी।

इस लोक-गीत में देवी हिडिम्बा की स्तुति के साथ-साथ मन्दिर की ऐतिहासिकता भी दर्शाई गई है। अर्थात् देवी हिडिम्बा तुम सभी स्थानीय देवी देवताओं में अग्रगण्य हो। माता ढुंगरी गांव का तुम्हारा मन्दिर युगों-युगों की कहानी को दोहराता है अर्थात् यह मन्दिर द्वापर युग में बना होगा जब अर्जुन इस लोक में आए थे। तब से लेकर आज तक यह मन्दिर पूजनीय है। आगे मन्दिर की शोभा का वर्णन किया है कि मन्दिर के चारों ओर देवदार के पेड़ तथा व्यास नदी का जल मन्दिर की शोभा मे चार चांद लगाता है। तुम्हारी पूजा और भक्ति हम कैसे करें, हम कलिकाल से ग्रस्त बालक हैं, तुम हमारी जननी हो। माता तुम ही हम भोले भाले लोगों की लाज बचाओगी। फिर वही है, मां हिडिम्बा! तुम सभी स्थानीय देवी देवताओं में अग्रगण्य हो

पहाड़ों के भोले भाले लोग शिवजी के परमभक्त है। और शिवजी भी अपने भक्तों का ध्यान रखते हैं। यहां हमें कुल्लू के महादेलेश्वर (बिजली महादेव) के मन्दिर में कुछ ऐतिहासिकता मिलती है। इस मन्दिर के पीछे भी एक कहानी है। कहते हैं इस पहाड़ी पर कुल्लू में हर साल आसमानी बिजली बरसातों में गिरती थी फिर शिव भक्तों ने भक्ति करके अपने महादेव को खुश किया था तब से अब आसमानी बिजली शिवलिंग पर ही गिरती है उस शिवलिंग में दरार आ जाती है फिर पुजारी (भक्तगण) उसे गाल के मक्खन से जोड़ देते हैं। एक लोकगीत जो भगवान शिव की स्तुति में गाया जाता है इस प्रकार है :-

म्हारे देऊग्र। बोला शिवजीग्रा
तेरी जय-जय कारा ग्रो।
ग्रर्थात् हमारे देवता शिवजी तेरी जय हो ।

कुल्लू की एक ग्रौर गाथा है जो इतिहास से जुड़ी हुई है । गाथा के ग्रनुसार कुल्लू में जब देवताग्रों को विशेष पर्वों पर रथ यात्रा निकलती है तो भगवान शंकर की पालकी के ग्रागे ग्रागे हेसी (वाद्ययन्त्र बजाने वाली जाति के लोग) बाजे बजाते चलते हैं ग्रौर उनसे भी ग्रागे हेमरण (हेसी जाति की स्त्री) नाचती हुई चलती है । यह वहां की परम्पारिक प्रथा है । देवताग्रों को मुख्य माना जाता है । ग्रौर देवताग्रों की पालकी चलने लगती है तो बाजे ढोल ढमाका होता है तथा ग्रागे नाच हो रहा होता है ग्रर्थात वहां के लोग खुशी में झूम कर ग्रपने महादेव की यात्रा में शामिल होते हैं। ग्रौर जब पालकी जूंहि चुपचाप चलेगी तो किसी को पता तक नहीं चलेगा कि महादेव की पालकी ग्रा रही है । परन्तु जब बाजे बज रहे होंगे हेसरण नाचती हुई ग्राएगी तो सारे वातावरण में बाजे की ग्रावाज लोगों को इस बात का एहसास करवायेगी कि उनके महादेव ग्रा रहे हैं। यह प्रथा कुल्लू की ऐतिहासिक प्रथा बन गई। परन्तु जब एक बार हेसरण यूं ही ग्रकेली बिना महादेव की पालकी के ग्रागे नाचती गाती मेले में पहुंच गई तो विस्मय भरी दृष्टि हेसरण पर जा टिकी तथा देखिये लोकगीत में हेसरण को कैसे पूछ रहे हैं :-

महादेऊ री हेसरिगयें । देऊ किवें नी ग्राणू ?
महादेऊ री हेसरिगयें ! देऊ किवें नू ग्राणू ?
ग्रोखे ग्रापू किग्रां पुछती देऊ डेहरे छोड़ी ।
कौढ़ू कोदका वेड़र, मिश कोदकी कोड़ी ?
एशकी हुई एतरी, ग्रागै. वै देऊ संघे ग्राणी ।
लोम डाही तू ग्रासरा, शोमा सा जांचे री बधाणी ।
महादेऊ री हेसरिगयें ! देऊ किवें नी ग्राणू ?
ग्रापू ग्राइ तू जाचा वै देऊ किवै नी ग्राणू ?

इस लोकगीत का सार यह है कि महादेव जी को मन्दिर में छोड़ हेसरण तू ग्रकेली मेले में पहुंच गई हमें हमारे महादेव से न मिला कर कब की दुश्मनी निकाली है तुम ने, ग्रौर फिर निवेदन करते है कि ग्रगली बार महादेव को जरूर लाना ग्रौर मेले की शोभा बढ़ाना ।

ग्राऊटर सिराज कुल्लू का यह इतिहास से जुड़ा मन्दिर ग्रौर रामायण से जुड़ा परशुराम जो निरमण्ड में है । परशुराम जी सन्त जमदग्नि तथा रेणुका का दसवां पुत्र था। परशु राम के नौ भाई जिन को पिता की ग्राज्ञा पालन न करने के ग्रभिशाप में लड़कियां बनना पड़ा था ग्रब देवियों के रूप में पूजी जाती हैं । परशुराम का रामायण में काफी वर्णन है।

सोमसी

ऐतिहासिक पात्र परशुराम ने जब पिता की आज्ञानुसार अपनी माता रेणुका का सिर अलग कर दिया था। परशुराम अपनी मां रेणुका को बहुत प्यार करता था अतः मां का धड़ शरीर (बिना सिर के) कन्धे पर उठा वही फलसा हाथ में ले चल पड़ा तथा कुल्लू के पास निरमण्ड के स्थान पर रुका। यहां उसने उसी फलसे से जंगल काटा। यहां आज ब्राह्मणों का गांव बसा है। परशुराम ने यहीं तपस्या भी की। जब परशुराम, राम जी से सीता के स्वयंवर के बाद मिले थे तो राम की अलौकिक शक्ति के आगे नतमस्तक हो गए थे और तब इसी गुफा में बाकी जीवन तप करते हुए बिताया था। परशुराम यहीं निरमण्ड में समाधीस्थ हुए थे। अब परशुराम का फलसा तथा उसके कर्णफूल तथा बाकी सामान इसी गुफा में रखा है। इस गुफा का दरवाजा मूंडा के दिन खोला जाता है जिसमें अब मानव बलि को बकरे की बलि में बदल दिया गया है यह मूंडायज्ञ बारह साल में एक बार होता है।

अब हम चलते हैं एक और ऐतिहासिक देवता के दर्शन करने जो "मलाणा" गांव का एक छत्र देवता है। जमलू देवता की आज्ञा के बिना उस गांव में कोई प्रवेश नहीं कर सकता यह मलाणा गांव अपने में अलग ही है। यहां की हर चीज निराली है। इस गांव के लोगों की बोली, वेशभूषा सब अलग है तथा रीतिरिवाज भी अलग हैं। इस जमलू देवता को कुछ लोग सन्त जमदग्नि से जोड़ते हैं। कार्तिक संक्रान्ति को इस का जन्म दिन मनाया जाता है।

जमलू देवता से एक ऐतिहासिक घटना जोड़ी गई है। जो अकबर बादशाह से सम्बन्धित है जब अकबर ने जमलू अधिपति से सोने का टका उगाहा तो जमलू के प्रकोप से सारा कुल्लू पीड़ित हो गया। व्याधियां फैली, लोग मरने लगे। जब अकबर को पता चला तो अकबर ने कुल्लू के राजा को जमलू की अपौरुषेय सत्ता का बोध पाने हेतु कोई चमत्कार दिखाने का आदेश दिया अन्यथा इसे राजा का षड्यन्त्र समझ कर राजा को दण्ड देने का निर्णय सुनाया। राजा भयभीत हो जमलू की मन्नत करने लगा, कहते हैं उस रात जमलू की शक्ति से अकबर की राजधानी में भारी हिमपात हुआ और पूरी दिल्ली श्वेत हो गई। तब कहीं अकबर ने जमलू का तेज तथा पराक्रम तसलीम किया। फिर समस्या यह थी कि शाही खजाने से कैसे पहचाना जाए कि जमलू का टका कौन सा है। इस पर देवता ने बताया कि मेरी दोनों मुद्राएं जुड़ी होंगी, ढूंढने पर वैसी ही मिली जो जमलू को लोटा दी। तब अकबर ने मलाणा गांव जाना चाहा परन्तु राजा ने रास्ते की विकटता बता कर जान बचाई। श्रद्धावत अकबर ने अश्वारूढ़ धातु की मूर्ति बनवा कर जमलू को जियारत में भेजी जो आज भी फाल्गुण में फागली के मेले पर दरबार में देवता के पास बैठाई जाती है और एक मेढ़ा हलाल कर सत्कारी जाती है।

एक देव भारथा लोकगीत जमलू देवता की स्तुति में प्रस्तुत है:—

म्हारे देऊआ तू जमलु आ कलाबधदी तेरी।
म्हारे देऊआ तू जमलु आ कला बधदी तेरी।

सोमा बघदा कलिजुगा रा, कला बधदी तेरी।
त्राई थी जुगा न ह्रोरी देऊये री,
शक्ति कलिजुगा न तेरी।
टका पूजू अकबरी खजाने न, देहली तख्ता हलाऊ।
बादशाहे मनी शक्ति देऊयै री, मलापै टका पजाऊ।
को दसनू तेरे सत तथा वै तू प्रत्यछ सा देऊआ।
तेरा चाकर मुंगा सा तो न, तेरी चरण सेऊगा।
म्हारे देऊआ तू जमलुआ कला बधदी तेरी।
सोमा बधदी कलिजुगा रो, कला बधदी तेरी।

अर्थात् हमारे जमलू देवता! तुम्हारी कलियुग में शक्ति उत्तरोत्तर बढ़ेगी। ज्यों-ज्यों कलिकाल का प्रभाव बढ़ेगा त्यों-त्यों तुम्हारा प्रभाव भी बढ़ेगा। तथा इस गीत में उसी टके का जिक्र किया गया है जो राज्य से अकबर के खजाने में पहुंचा था तथा बताया है कि जमलू की शक्ति ने दिल्ली का तख्ता भी हिला कर रख दिया था। तुम्हारे तप और सत का वर्णन कौन कर सकता है तुम साक्षात देवता हो। मैं आपका सेवक हूँ। तुम्हारे चरणों की सेवा करने का वरदान मांगता हूं। हमारे देवता जमलू कलियुग का प्रभाव बढ़ रहा है इसलिए तुम्हारी शक्ति भी बढ़ रही है।

मलाणा गांव का एक त्यौहार जो बैशाखी के दिन मनाया जाता है तथा इस में हरिजन कन्याएं तथा उच्च कन्याएं इकट्ठी मिल कर नाचती गाती हैं। इस में सन्ध्या के समय कन्याएं श्राणी (सारनी) गायन करती हैं। जिस की कुछ पंक्तियां द्रष्टव्य है (यह श्राणी गाथा है): --

हाओ आओ, कहो छेरी।
तोरी बो डोखूरा, तेरी डोखरा पालेंड ओ जोगी।
शुंने सो रेढकी मोतियारो घढ़ी जे,
गुगरुआं देउ जमलू रे वार
उच्फुए नीमुए धनी राम लजूए ओढ़ी लजनकार।
उच्फुए नीमुए तोतूरा मोल तोते नोए ओढी लजनकार।

इस त्यौहार की एक खास बात है कि इस त्यौहार पर मन्दिर में पुजारी या गुरु के सिवाय कोई अन्य पुरुष नहीं होता। कन्याएं सारी रात उपवास करती हैं व जगराता करती हैं। तथा सुन्दर वस्त्रों, आभूषणों, पुष्पों से सजी होती हैं।

'श्राणी' लोकानुष्ठान की परिपाटी में की जाती है। मधुमास में कुंआरी कन्याएं सन्ध्या के समय एक साथ एकत्र होकर मन्दिर में स्थानीय भाषा में श्राणी लोकगीत का सामूहिक गान करती हैं। श्राणी की भाषा शब्दावली अतिप्राचीन एवं दुर्बोध है।

इस प्रकार ऐतिहासिक मन्दिर,ऐतिहासिक स्थल, देवभूमि कुल्लू की शोभा हैं और यह हमारे इतिहास का एक हिस्सा हैं। यहां कुछ पात्र पांडवों से जुड़े और कुछ पात्र रामायण से तथा इन दोनों से जुड़े हैं हमारे कुल्लू के लोकगीत, जिन में ऐतिहासिक स्थलों की कहानी है जो इन ऐतिहासिक पात्रों की याद तरोताजा करती है।

द्वारा राज्य पाल के निजी सचिव
श्री अमर सिंह, राज भवन
शिमला-171002

चच्योट क्षेत्रीय गृह निर्माण कला व प्रदेश प्रथा

● मोती लाल घई

हिमाचल प्रदेश के मण्डी जनपद में पूर्व की ओर लगभग चार हज़ार फुट तक की ऊंचाई में फैले इस पर्वतीय भूभाग को चच्योट के नाम से जाना जाता है। यह क्षेत्र अपनी प्राकृतिक सुषमा के लिए बड़ा प्रसिद्ध है। स्लेट, आलू, सेब आदि इस क्षेत्र के विशेष उत्पादन है। ऊनी पट्टू, पट्टियां पूलें तथा भांग के रेशों से निर्मित रस्सियां यहां की प्रमुख दस्तकारी है। चीड़,देवदार, रई, कैल, तोस आदि के घने जंगल होने के कारण ईमारती लकड़ी बहुतायत से उपलब्ध हो जाती है। लोगों के वेश-भूषा, खान पान, रहन सहन, रीति रिवाज तथा भाषा जनपद के शेष भागों से बिल्कुल ही भिन्न है। यहां भवन निर्माण कला की भी अपनी ही एक विशिष्ट शैली है मकान बनाते समय पहले उसकी नींव पत्थरों से तैयार कर ली जाती है इसके पश्चात् मकान को ऐसा रूप दिया जाता है कि इसका समस्त ढांचा लकड़ी की जुड़ी हुई चौखटों के ऊपर खड़ा होता जाता है। मकान की दीवारें तैयार करते समय अन्दर और बाहर से चार पांच इंच मोटी लकड़ी इस तरह से लगाई जाती है कि मकान के सारे कोने लकड़ी के बनते चलते हैं। कोने में ऊपर और नीचे की लकड़ी में सूराख करके लकड़ी की ही कीलें बनाकर डाल दी जाती है जिससे दीवारों की लकड़ियां पक्की बैठ जाती हैं और फिर कभी हिलने का नाम ही नहीं लेतीं। दीवारों में लकड़ी पांच छ: इंच के अन्तर पर डाली जाती है। बीच के खाली स्थान में पत्थर लगाए जाते है। पत्थर भी इस क्षेत्र में अधिकतर स्लेट नुमा ही पाए जाते हैं जिन्हें कारीगर अपनी मर्जी के मुताबिक रूप दे सकता है। पत्थरों के साथ मिट्टी का गारा लगाने की कोई आवश्यकता नहीं होती। यह मकान इस तरह बनाए जाते हैं कि चाहो तो सारा मकान तैयार कर लेने के बाद ही धीरे धीरे समय निकाल कर दीवारों में पत्थरों की चिनाई करते रहो। यानी लकड़ी यदि पर्याप्त मात्रा में है तो सारा मकान लकड़ी का ही तैयार किया जा सकता है। पत्थरों की चिनाई मकान बनाने के बाद भी की जा सकती है। ऐसे ढंग से निर्मित भवन बहुत ही मजबूत होते है। ऐसे भवन भूकम्पीय क्षेत्रों में बड़े लाभदायक सिद्ध हो सकते हैं। क्योंकि बड़े से बड़ा धक्का आने पर भी यह मकान हिलते नहीं। इन मकानों की एक और विशेषता है कि बनाते समय बीच की दीवारों पर ऐसे बड़े बड़े शहतीर रखे जाते हैं जो प्राय: एक ही वृक्ष के होते हैं। इन शहतीरों को 'खरहयान्द' कहा जाता है। यह प्राय: पांच छ: छ:

फुट दीवारों से बाहर की ओर निकाले जाते है और इन्हीं शहतीरों पर ऊपर नीचे के बरामदे तैयार कर लिए जाते है। एक प्रकार से यह शहतीर बरामदों और आधे छप्पर का भार अपने ऊपर ले लेते हैं।

इस क्षेत्र में अभी तक कई ऐसे भवन विद्यमान है जिनके निर्माण काल का किसी को भी पता नहीं। पीढ़ी दर पीढ़ी परिवार उसमें रहते आ रहे हैं। यहां भवन प्रायः दो या तीन मंजिल के तैयार किए जाते हैं। ऊपर का भाग "बोहड़' बीच का भाग "फड्ड" और नीचे का भाग "खुहड" कहलाता है। "बोहड़" आम तौर पर रसोई घर और बैठक का काम देती है। परिवार के सदस्य और आने जाने वाले प्रायः बोहड़ में ही बैठते हैं। यहीं अंगीठा होता है जिसके पास आग भी तापी जा सकती है और हुक्के में दम भी लगाया जा सकता है। रात को यहीं सोया भी जा सकता है। बीच की मंजिल का भाग 'फड्ड" कहलाता है। यह एक प्रकार से बन्द सा कमरा होता है जो भण्डार गृह का काम देता है। इस में अन्न आदि तथा घर का दूसरा सामान व वस्त्रों आदि के सन्दूक रखे जाते हैं। बन्द सा होने के कारण सर्दी के मौसम में यहां सो भी सकते हैं क्योंकि ऐसे बन्द कमरों में ठण्डी हवायें नहीं पहुंच पाती जिससे यह सोने के लिए आरामदेह रहते हैं। नीचे की मंजिल 'खुहड़' पशुशाला कहलाती है। इस में पशु बांधे जाते हैं। अन्दर से इसके दो भाग होते हैं। दीवार के साथ अन्दर तख्तों की रोक लगाकर छोटे छोटे खाने से बना दिए जाते हैं जिनमें प्रायः छोटे बछड़े और भेड़ें रखी जाती हैं। शेष भाग में गाय और बैल बांधे जाते हैं। एक कमरे से दूसरे कमरे में उतरने के लिए छत के कोने पर सुराख रख दिए जाते हैं। ऊपर नीचे चढ़ने उतरने के लिए लकड़ी की सीढ़ी लगी होती है। अधिक सुविधा के लिए दो लकड़ियां भी रख दी जाती हैं। इनके बीच में बसोले से काट कर पैर रखने के लिए स्थान बना होता है। मकान के बाहर चारों तरफ जो ऊपर नीचे बरामदा सा बना होता है उसे "डाणा" कहा जाता है। यह बरामदे धूप में उठने बैठने के काम आ जाते हैं। कोने पर पानी रखने के लिए भी स्थान बना दिया जाता है। प्राय: स्नान और बर्तन आदि भी इन्हीं बरामदों में साफ किए जाते हैं। इनका कुछ हिस्सा तख्ते लगा कर बन्द कर दिया जाता है। कमरों में खिड़कियां आदि रखने की कोई प्रथा नहीं। छोटे छोटे झरोखे रखे जाते हैं जिनसे थोड़ा सा प्रकाश ही अन्दर आ पाता है। दरवाजे चार साढ़े चार फुट ऊंचे होते है जिससे लांघती बार आदमी को थोड़ा झुकना पड़ता है। दरवाजों के पाट बड़े बड़े मोटे तख्तों से बनाए जाते हैं। इनके ऊपर नीचे कोई चार अंगुल लम्बी चूलें निकाल दी जाती हैं फिर दरवाजे के ऊपर नीचे के कोनों में सुराख करके तख्ते उसमें फंसा दिए जाते हैं यह दरवाजे मजबूत और टिकाऊ होते हैं। खोलते और बन्द करते समय इन से 'घरड बरड' की आवाज आती है। काफी दूर तक यह पता लग जाता कि फलों के मकान का दरवाजा खुला या बन्द हुआ। प्रायः यह दरवाजे लांघते समय हाथ के धक्के से खोले जाते हैं और बन्द करते समय बिना मुड़े पीठ और बाजू की कोहनी के धक्के से बन्द कर दिए जाते हैं। कई कई दरवाजों पर बेल बूटे डालकर बड़ी सुन्दर नक्काशी की जाती है। दरवाजे के बाहर लोहे की सांकल लटकी रहती है जिसे बाहर जाते समय

दरवाजे में लगे लोहे के कुंडों में फंसा कर दरवाजा बन्द कर दिया जाता है। रात को अन्दर से बन्द करने के लिए दीवारों के बीच में एक लम्बी लकड़ी "अागल" को सरका कर पाटों के पीछे किए हुए सूराखों में फंसा दिया जाता है फिर चाहे बाहर से कोई कितना जोर लगाए दरवाजा खुल ही नहीं सकता। अमूमन ताला लगाने की प्रथा नहीं। घर के अन्दर भी किसी खास सन्दूक को ही ताला लगाया जाता है जिसमें आभूषण या नकदी आदि रखी हो।

कमरों की दीवारों में अलमारी आदि बनाने की प्रथा नहीं। कही कहीं दीवार के बीच में "पटड़ी" डाल दी जाती है। यह एक प्रकार से अलमारी का काम देती है। इसमें नीचले भाग में तीन चार फुट ऊंचे बन्द खाने बना दिए जाते हैं और ऊपर फुट दो फुट का एक खाना बना दिया जाता है। दोनों खानों के बीच इस प्रकार तख्ते लगाए जाते हैं जिन्हें कभी भी खोला जा सके। नीचे के भागमें अनाज रख दिया जाता है और ऊपर के भाग में सोने आदि के वस्त्र रख दिए जाते है। इसका यही सुख है कि कमरे मे स्थान का आभाव नहीं पड़ता मकान के छप्पर प्रायः ढलानदार होते है और इन में भी मोटी लकड़ी लगाई जाती है ताकि वह स्लेटों का भार सह सके। छप्पर में आमतौर पर बड़े बड़े और कुछ मोटे स्लेट लगाए जाते हैं। इन स्लेटों को फंसाने के लिए स्थानीय लुहारों से लोहे की विशेष कीलें तैयार कराई जाती हैं। छप्परों के ऊपर स्लेट इसतरह से लगाए जाते हैं कि आदमी ऊपर निघड़क होकर चल सकें। मक्की आदि छप्परों पर ही सुखाई जाती है।

इस क्षेत्र में मकान का निर्माण करने वाले कारीगर को दैनिक मजदूरी 'दिहाडी' पर लगाने की परम्परा नहीं रखी है। अधिकतर कारीगर राजपूत या धावीं जाति से सम्बन्ध रखते है। कारीगर मकान बनने पर अपना सारा हिसाब लगा कर इकट्ठा पैसा मांगता है जिसे यहां 'ठांगणी' कहा जाता है। यह कारीगर पर निर्भर करता है कि वह मांगे हुए पैसे से थोड़ा बहुत कम करले। मकान मालिक को उतना पैसा देना ही पड़ता है। कारीगर दोनों समय बढ़िया खाना खाता है। शाम को गन्दम के आटे की रोटी और सुबह चावल। उसे सब्जी या दाल भी अच्छी तरह से तैयार की हुई चाहिए। कारीगर को शाम के समय रोटी खाते समय दो चार "च्यांखड़ी" तोले सवा तोले का एक पैमाना घी प्रतिदिन दिया जाता है। संक्रांति के दिन कारीगर के घर दस सेर कच्ची गन्दम और एक सेर कच्चा घी मकान मालिक को उसके घर पहुंचाना पड़ता है। यदि इसमें किसी प्रकार की त्रुटि रह जाए तो कारीगर रुठ कर घर चला जाता है। फिर उसे बड़ी मान मनौवल के बाद वापिस लाना पड़ता है। यदि करीगर किसी प्रकार से रुठ कर मकान का काम न करना चाहे तो कोई भी दूसरा कारीगर तबतक उस मकान में काम नहीं कर सकता जबतक कि रूठे कारीगर के साथ उचित फैसला नहीं हो जाता। कभी कभी फैसला करते करते साल दो साल भी व्यतीत हो जाते है।

नवगृह प्रवेश प्रथा को यहां "घरवासण" कहा जाता है। नए मकान में प्रवेश करने के लिए स्थानीय प्रमुख देवता और पुरोहित से परामर्श लेकर दिन निश्चित किया जाता है। उस दिन सगे सम्बन्धी और आस पड़ोस के सभी लोगों को आमंत्रित किया जाता है। प्रायः गृह प्रवेश प्रथा रात

को ही निभाई जाती है। इस दिन ग्राम के अधिष्ठाता देवता को भी निमन्त्रित किया जाता है। "घरवासण' के दिन शाम के समय 'बजन्त्रियों' के साथ देवता को खूब बाजे के साथ लाया जाता है। देवता की कार्य कारिणी के सभी सदस्य साथ होते हैं। घर के आंगन में देवता के पहुंचते ही उस के ऊपर से 'नारियल' या 'बकरे का बारण्डा' बलि दी जाती है। अर्थात् नारियल या बकरे को देवता के सिर के ऊपर से दूसरी तरफ फैंक दिया जाता है। फिर देवता को उठाकर पहली मंजिल 'खुहड़' के किसी एक कमरे में प्रतिष्ठित किया जाता है। यहां पुरोहित देवता की पूजा करके हवन आदि करता है। उसके पश्चात् देवता का "गूर' दुभाषिया "छेहरने" खेलने लगता है अर्थात् देवता उसके ऊपर आ जाता है। घर के और दूसरे लोग 'गूर' से 'दाणे' या 'पाने' मांगते है। पांच सात की गिनती में दाने आने का अर्थ देवता की प्रसन्नता से लिया जाता है यदि चार छः की गिनती में आए तो कुछ भूल समझी जाती है और उसका उपाय खोजकर देवता से दया मांगी जाती है। सब कार्य कर लेने के बाद इसी कमरे में बकरे की बली दे दी जाती है। इसके पश्चात् मकान के छप्पर के ऊपर कुछ अन्य काम किये जाते है जिसे "काशा" देना कहा जाता है।

छप्पर तैयार करते समय मिस्त्री एक बड़े से स्लेट को खुला या बिना कील लगाये छोड़ देता है। इसे 'घुंघर' या'सिऊड़' कहा जाता है आम तौर पर 'बोहड़' से छप्पर पर चढ़ने के लिए यह 'सिऊड़' रास्ते का काम देता है। साथ ही इससे 'बोहड़' में प्रकाश के आने की व्यवस्था भी होती है। "काशा" देने के समय देवता का गूर,महता, कट्वाल, हारु एक बकरी और 'जोगणी' मशालें लेकर'सिऊड़' के रास्ते से छप्पर पर जायेंगे। ब्राह्मण साथ जायेगा। जाती बार पहले उस रास्ते मे बकरी छप्पर पर निकाली जायेगी। उसके बाद 'जोगणी' बाहर निकाली जायेगी। फिर गूर ब्राह्मण, हारु और दस बीस अन्य व्यक्ति बारी बारी से छप्पर पर चढेंगे। साथ गूर द्वारा अभिमन्त्रित जो आदि सात अनाजों का 'सतनाजा' भी ले जाया जायेगा। छप्पर के एक सिरे पर एक स्लेट पर "संजीया" दीपक रख दिया जायेगा। एक 'कुन्धड़ी' मिट्टी का बर्तन जिसमें सेर भर घी होता है ऊपर ले जाया जाता है। 'गूर' के एक हाथ में लोहे का 'गज' देवता का निशान होता है। उस गज को 'गूर' छप्पर के सिरे के बीच में लगाता है और दूसरा व्यक्ति 'कुन्धड़ी' से गज के ऊपर घी डालता है। अन्य व्यक्ति "हुदगे' भिन्न-2 देवताओं की ऊंचे स्वर से जय जय कार करते जाते हैं। छप्पर के चारों कोनों पर भी एक एक मशाल, दीपक और फुल्का रख दिया जाता है। एक लोटे में पंचगव्य 'पाची' दूध, गोबर आदि पांच चीजें डालकर ब्राह्मण मकान को पवित्र करता है। उसके पश्चात् बकरी को छप्पर के सिरे 'लादे' पर खड़ा कर दिया जाता है। बकरी को काटने वाला तथा पकड़ने वाला 'आई' गांव का व्यक्ति होता है। काटने वाले के हाथ में 'तबरी' फरसा या 'दाच' दराट होता है। नीचे आंगन में खड़ा लुहार मन्त्र बोलकर जो के दाने ऊपर फैंकता जायेगा। मिस्त्री भी ऊपर खड़ा होकर मन्त्र कहता जायेगा और जो के दाने छप्पर के ऊपर तथा मकान के चारों ओर फैंकता रहता है। छप्पर पर पांच छः किलो के लगभग भोजन भी रखा रहेगा। नीचे आंगन में बडे जोर से बाजा बजता जायेगा। यह अपने आप में एक बड़ा विचित्र दृश्य होता है। कुछ देर के बाद कारीगर और 'घरध्वाणी' मकान मालिक 'सिऊड़' के रास्ते बोहड़ में उपर जायेंगे

ग्रोर उसे बंद कर देंगे। फिर बाजे के शोर में बकरी काट दी जायेगी। उसका सिर ग्रांगन में बाजों वालों की तरफ ग्रौर घड़ मकान की पिछली तरफ फैंक दिया जाता है। जो व्यक्ति छप्पर पर होंगे वह रखे हुए भोजन को काली भगवती के नाम पर चढ़ायेंगे ग्रौर फिर ग्रापस में बांट कर खा लेंगे। बजन्त्रियों को ऊपर से ही ग्रांगन में भोजन फैंका जाता हैं। इसके पश्चात छप्पर पर चढ़े हुए व्यक्ति सीधे ही बाहर से नीचे उतर जायेंगे।

इसके पश्चात् देवता को 'खुहड़' से उठाकर 'बौहड़' में ले जाकर पूजा जाताहै। यहां भी देवता का गूर खेलता है ग्रौर लोग उससे पहले की तरह ही दाने मांगते हैं। यहां भी बकरा काटा जाता है इस तरह तीन स्थानों पर तीन बलियां दी जाती हैं। छप्पर पर काटी हुई बकरी के ग्राधे मांस ग्रौर 'मुण्डी' पर कारीगर का हक होता है। 'बौहड़, की 'मुण्डी' गूर की ग्रौर 'खुहड़' की 'मुण्डी' ब्राह्मण की होती है। इसी दिन मकान में ग्रन्य गृह देवताग्रों को भी प्रतिष्ठित कर दिया जाता है। गूर ग्रौर ब्राह्मण को पांच सात-सात किलो के लगभग ग्रनाज भी दे दिया जाता है।

गृह प्रवेश की रस्म पूरी हो जाने के पश्चात् कारीगर को उसकी मजदूरी के लिए पूछा जाता है। इसमें प्रमुख-प्रमुख व्यक्ति भाग लेते हैं। कारीगर जितनी मजदूरी मांगेगा उसमें से सभी मिलकर थोड़ा बहुत छूट मांगेगे। फिर कारीगर के सहमत होने पर जो मजदूरी निश्चित हो गई वह मकान मालिक को उसी समय ग्रदा करनी पड़ेगी। इस दिन मकान मालिक की तरफ से कारीगर को नया साफा, कोट, कमीज पाजामा ग्रादि सभी वस्त्र तथा नए जूते पहनाए जाते हैं। उसे हर दृष्टि से प्रसन्न किया जाता है। रात को "धाम', का ग्रायोजन होता है। सभी लोग खा पीकर निवृत होने के पश्चात् बाहर ग्रांगन में जलते ग्राग के ग्रलाव के चारों ग्रोर मस्त होकर नाचने लगते हैं। पुरुष ग्रौर स्त्रियां बाहों में बाहें डालकर शहनाई ग्रौर लोकगीतों की मधुर धुन पर सारी रात मस्ती से झूमते रहते हैं। सुबह होने पर सभी ग्रपने-ग्रपने घरों को लौट ग्राते हैं।

प्रातः होने के बाद कारीगर को खिला पिला कर विदाई दी जाती हैं। पांच दस ग्रादमी उसके साथ होते हैं। कुछ उसका सामान उठाते हैं ग्रौर एक व्यक्ति उसे कंधे पर उठा लेता है। फिर सभी जोर-जोर से हो-हो का शब्द करते हुए उसे कुछ दूर छोड़ कर वापिस ग्रा जाते हैं। "बरग्राचरण" मकान प्रतिष्ठा के बाद ही उसमें खाना पकाना ग्रादि ग्रारम्भ होता है। यह ध्यान देने योग्य बात है कि यहां चूल्हे ग्रादि बनाने की प्रथा नहीं। 'बौहड़' के बीच में एक वृताकार ग्रंगीठा बना दिया जाता है जिसके बीच में लोहे का तीन टांगों वाला वृताकार "धलवान" रख दिया जाता है। इसके उपर खाना बनाने के बर्तन रख कर खाना तैयार कर लिया जाता है। इसमें लकड़ी तो ग्रधिक लगती है लेकिन चारों तरफ से लगाई जा सकती है ग्रौर सभी व्यक्ति ग्राग तापने का ग्रानन्द ले सकते हैं।

ग्राज परिस्थितियां बदल चुकी हैं। नए जमाने के साथ मकान भी नए ढंग के बनाए जाने लगे हैं। नया परिवर्तन का प्रतीक है। फिर भी पुराना, पुराना ही है ग्रौर नया नया ही है।

ग्राम व डा० गुरकोठा
जिला मण्डी (हि०प्र०) 175036

हिमाचली लोकगीतों की बहुविधता

● राज रानी शर्मा

एक सास अपनी नवविवाहिता बहू से कहती है अपना घर बसाना सीखो। बहू अभी नई- नई है। उसे ससुराल के रीति रिवाजों का कुछ पता नहीं है। घर किस तरह बसाया जाता है। उसके लिए उसे क्या करना पड़ेगा यह नहीं जान पाती तो सास से ही पूछ बैठती है, अम्मा जी आप ही बतायें मुझे क्या करना होगा तो सास उसे किस तरह समझाती है! इस गीत से पता चलेगा।

अनी मेरी अम्मड़िए मेरी माए
एह घर कीयां करी बसदे।
इनां घरां लिप्पिए परोलिए
लिखिए एहपण पाइए
एह घर ईयां करी बसदे।
इनां घरां जम्मणपूत
आवण नूहां सुहागणीं
एह घर ईयां करी बसदे।
ईयां घरां जम्मण धीयां
आवण छैंत जुआई
जाँदे रोटियां खाई
एह घर ईयां करी बसदे।
अनी मेरी अम्मड़िए मेरी माए
एह घर कीयां करी बसदे।

कहीं ब्याह शादी की रौनक है तो कहीं बेटे के पैदा होने की खुशियां मनाई जा रही हैं। तो कहीं बहू सास से विनती कर रही है कि मुझे कई बार बुलाने के लिए मेरा भाई आ चुका है सो कृपा करके आप मुझे मायके भेज दें। बड़ी कठिनता से सास को मना कर आज्ञा मिली तो पतिदेव ने इन्कार कर दिया। अब साजन को कैसे प्रेम भरे शब्द जाल में उलझा कर आज्ञा प्राप्त करती हैं।

बीर बधाइयां माइया जो जित्त घरे आओ ;
माइया जी इत्त घरे भाई के रचना लाओ !!
इस बधावे जो मैं दिन्नियां सूत भले !
अज घर चाहींदे रामा जी ससू दे पूत भले !!
इस बधावे मैं दिन्नियां रामा जी चीर भलें !
अज घर चाहीं दे रामा जी मैणा दे बीर भलें !!
इस बधावे जो रामा जी दिन्नियां तंद भले !
अज घर चाहींदे रामा जी गोरियां दे कंद भले !!
इस बधावे जो मैं दिन्नियां गुड़े घेयोए रयोड़ियां !
अज घरे चाहींदियां रामा जी माइयां दीयां जोड़ियां !!
सूई तो डोरो रोंगली बहिणी ता लगदा रंग ए !
अरजां कर रही ससू सांहजो पेइयां भेज बी ए !!
पंज सत फेरियां ससू जी बीरन साहडा पाई गेया ए !
इक्कीयां फेरिया ससू जी सांहजो पेइयां भेज बी ए !!
तिज्जो कीयां भेजा नूएं कम्मे मेरे कौण करे ।
कम्मे करन तेरियां धीयां ससू जी सांहजो पेइयाँ भेज बो ए !!
मिंजो क्या पुच्छदी नूंए नी पुछ अपने कंदड़े !
पंज सत फेरियां ढोला जी बीरन साहडा पाई गया ए !!
इक्कीया फेरिया ढोला जी सांहजो पेइयां भेज बी ए !
तिज्जो कीयां भेजा नाजो सेजा मेरी सुन्नी होई जांदी
सेजा तेरिया फुल्ल धरां ढोला जी सांहजो पेइयां भेज बी ए !
इन्नां फुलां बास नी गोरिए नैणां साहडे निंद नहीं
इन्नां फुलां बास देसां ढोला नैणां तेरे निंद देसां !
नई पछतांदा ढोला कल घरे आई रेहणा !!
मंदी ए पड़ेसनी मैंण अंगण तेरे कौन खड़ा !
दिंदा फारसी मैणे लैंदी गोरी हथकड़ा !!

गोरी दर्द से व्याकुल हो रही हैं। हाय-हाय सुनकर साजन कहीं जाग न जाए। इसलिए आकर बगीचे में मरुए के पेड़ के नीचे खड़ी हैं। सुहावनी चांदनी की ठंडक में भी दर्द के मारे पसीना छूट रहा है। इतनी शर्म की बात है किसी के साथ कह भी नहीं सकती। इतने में साजन आप जाते हैं। प्रिया को अपने पास न देख सोच में पड़ गये। वह अकेली इतनी रात गये कहां चली गई होगी। बाहर आए देखा तो पूछने लगे।

चंद घनेरड़ी रात अजी रामा चंद घनेरड़ी रात
मरुए छोंपा कौण खड़ी अबे आं
तू साहूकारे दा पुत्र अजी रामा तू साहूकारे दा पुत्र
गरीबां दी धी आो खड़ी अबे आं

जे तूं गरीबां घी अनी नाओ जे तूं गरीबां घी
पौड़ी पौड़ी आओ चढ़ी अबे आं
खेलदी थी सैंईया दे नाल अजी खेलदी थी सैंइया दे नाल
हुण कींया चुप्प वो खड़ी अबे आं
बड़ी मारी सरमा दी बात अजी रामा बड़ी मारी सरमा दी बात
किसे संग कही न जाऐ अबे आं
मेरा तेरा बड्ड़ा प्यार अनीं नाओ मेरा तेरा बड्ड़ा प्यार
मेरे संग कही ओ देणी अबे आं
कंडड़ी गेया लस्कार अजी रामा कंडड़ी गेया लस्कार
जंघी बांई सुन्व पेई अबे आं
हो घोड़े अस्वार अजी रामा हो घोड़े अस्वार
पिछें चरुएदार प्यादा अग्गे करो अबे आं
पुछदा है हट बाजार अजी रामा हुर खुए पणिबांहद
दाइया माइया कौण घरे अबे आं
अ'गण चम्बा रुख अजी रामा अ'गण जम्बे दा बूट
दाई माई चरखा कत्ते अबे आं
करदी ऐ बोल करार अजी रामा करदी है बोल करार
जम्मे तेरा पूत बधे तेरा गोत
दाइया माइया क्या तां मिले अबे आं
पज रूपइये रोक सिरे जो चोप
कन्हैया तेरिया गोदा खेले अबे आं
जे तेरे जरमेगी घी अजी रामा जे तेरे जरमेगी
घटे तेरा जी ओ घटे परिवार
दाइया माइया क्या तां मिले अबे आं
इक रुपइया रोक अजी रामा इक रुपइया रोक
डंडे दी ठोक पुरानी जेही झोलणी अबे आं
घोड़े मैं भेजा चार अनी दाइए घोड़े मैं भेजो चार
घोड़ेयां ऊपर आओ चढ़ी अबे आं
घोड़ेयां दे बड्डे-बड्डे सुम्ब अजी रामा घोड़ेयां बड़े-बड़े सुम्ब
सुम्बा दिखी डर वो लगे अबे आं
हाथी मैं भेजा चार अनी दाइए हाथी मैं भेजा चार
हाथियां ऊपर आओ चढ़ी अबे आं
हाथियां दे बड़े-बड़े दंद अनी रामा हाथियां दे बड़े-बड़े दंद

बंदा विखी डर यो लग्गे अबे भां
डोले मैं भेजां चार अजी रामा डोले में भेजां चार
डोलेयां बिच आयो वही अबे भां
आप गये चौखंड अजी रामा आप गये चौखंड
दाई माई ओबरिया अबे भां
जरमेया रघुपत रायो अजी रामा जरमेया रघुपत रायो
नगारे चोट पेई अबे भां

साहूकार का बेटा है। बाई को मुंहमांगी मुराद मिलेगी। फिर ऐसे समय पर दाई को भी पता है चाहे सो नखरे करूं इन्हें मेरी सख्त जरूरत है। यही समय हैं जब यह लोग मेरी हर बात पूरी करेंगे। नाज नखरे भी ऐसे ही समय पर काम आते हैं।

एक बहन को अपने भाई से कितना प्यार होता है। यह तो वही जान सकती है। भाइयों से अधिक प्रेम भाभियों से होता है फिर यदि भाभी अपनी ननदों की इस कोमल भावना को समझने वाली हो तो घर स्वर्ग बन जाता है। परन्तु ननदों को भी भाभियों से ढाह नहीं करनी चाहिए उनका अपना घर तो ससुराल है। यह घर भाई भाभी का है। जब ननदों में यह भावना आ जाती हैं तभी भाभी उसे बहन, प्रेम करने वाली सखी व सच्चा मित्र व सलाहकार समझ कर उसे सगी बहन की तरह ही प्रेम करती है। जहां ननद भाभियों का प्यार होता है वहां यदि थोड़ा बहुत तकरार भी हो जाए तो कोई बड़ी बात नहीं। परन्तु ननदों को भाभी की बराबरी करना, मायके में हर काम में टांग अड़ाना, भाभी की हर बात को नीची दिखा कर अपनी अक्लमंदी की धौंस जमाना, भाई के कान भर के भाभी को डांट दिलाना और इसी में अपना उल्लू सीधा करना आदि बातें ही भाभी का मन फटाती है। फिर जब भाभी का समय आता है और वह अपना अधिकार पाते ही ननदों को मुंह लगाने से भी कतराती है। सो हर ननद को यही बात याद रखनी चाहिए कि घर की मालिक भाभी ही है। मैं तो मात्र मेहमान हूं इसलिए हमें मिलजुल कर रहना ही शोभा देता है। एक बहन अपने भाई भाभी को हंसते खेलते देख कितनी प्रसन्नता का अनुभव कर अपनी सखियों को बतलाती है :-

पिप्पलिए चारों भोलरिए
किन्नी मोड़ेया तेरा डालू, बधावे जो बल जानी भां
इन्हां राहीं मेरा बीर गेया
उन्नी मोड़ेया मेरा डालू, बधावे जो बल्ल जानी भां
डालू न मोड़ेयां बीरा कलियां न तोड़
फुल्लां बीओ पग्ग भरेयां, बधावे जो बल्ल जानी भां
किन्नी उसारियां ओबरियां

किन्नी लिखे तित्तर मोर, बधावे जो बल्ल जानी आं
माइयां उसारियां ओबरियां
मामो लिखे तित्तर मोर, बधावे जो बल्ल जानी आं
कौरा सुत्ता जिता ओबरिया
कौरा झोले ठंडी बौल, बधावे जो बल्ला जानी आं
माई सुत्ता जिता ओबरिया
मामो झोले ठंड बाओ बधावे जो बल्ल जानी आं
झोल झुलैंदी गोरी अरजां करे
मैं मन चूड़ले दा चाव, बधावे जो बल्ल जानी आं
तिज्जो चूड़ला घड़ांगा गढ़ राजपुरे
झोलेयां ठंडी ठंडी बौल, बधावे जो बल जानी आं
झोल झुलैंदी गोरी अरजां करे
मैं मन सालुए दा चाओ, बधावे जो बल्ल जानी आं
सालू बरावांगा गढ़ राजपुरे
झोलेयां ठंडी ठंडी बौल, बधावे जो बल्ल जानी आं
मैं मन बालुए दा चाओ, बधावे जो बल्ल जानी आं
तिज्जो बालू घड़ांगा गढ़ राजपुरे
झोलेयां ठंडी ठंडी बौल बधावे जो बल्ल जानी आं

अपने भाई भाभियों को इसी प्रकार खुश देख कर स्वयं भी खुशी होना चाहिए। क्योंकि उन्हें भी तो किसी की भाभी बनना है।

भैय्या की शादी है। भाई घोड़े पर सवार हो अपनी दुल्हन लाने ससुराल जा रहा है। बहनें अपना नेग मांगती हैं। ससुराल पहुंचने पर दुल्हन कहती है कि मैंने तो तुम्हें अकेले ही बुलाया था। इतनी भीड़ को लेकर क्यों आए। फिर दूल्हे राजा सालियों से घिर गये उन्होंने भी अपना नेग मांगा तो दल्हे राजा को भी शरारत सूझी। उसने कहा कि अब सालियों ने तो अपना नेग ले लिया। हमें भी हमारा नेग मिलना चाहिए। सालियों और जीजा का मजाक तो शुरु से ही चलता आया है। फिर ऐसे खुशी के मौके पर थोड़ी चुहलबाजी अच्छी ही लगती है।

ठप्प घोड़ी ठप्पा बांगा दे बन्ने
बांगा दी ठंडी छाओं,
बांगा दी ठंडी छांओ रजादा बांगी ठंडी छांओ
अप्प रजादा घोड़िया चढ़ेया भैरा मंगदियां लाग
भैरां मंगदियां लाग रजादा भैरा मंगदियां लाग
पंज रुपइए डंड खंड चूढ़ा
लेयो भैरो अपना लाग
लेयो भैरा अपणा लाग रजादा लेयो भैरो अपना लाग

सदेया था मैं किल्ल दुकिल्ले
ग्राया चौंह माइयां दे नाल
ग्राया चौंह माइयां दे नाल रजादा ग्राया चौंह माइयां दे नाल
सदेया था मैं चुप्प करीते
ग्राया नगारेयां नाल
ग्राया नगारेयां नाल रजादा, ग्राया नगारेयां नाल
सदेया था मैं मोरी दे रास्ते
ग्राया बजारां दे राह्
ग्राया बजारां दे राह् रजादा ग्राया बजारां दे राह्
सदेया था मैं कमली दी बुकली
ग्राया दुसालेयां नाल
ग्राया दुसालेयां नाल रजादा ग्राया दुसालेयां नाल
ग्रन्द बड़ेया तां सालियां फड़ेया
देयो जीजा साहडा लाग
देयो जीजा साहडा लाग रजादा देयो जीजा साहड़ा लाग
पंज रुपइए पाना दे बीड़े
लेयो साली ग्रपणा लाग
लेयो साली ग्रपना लाग रजादा लेयो साली ग्रपना लाग
ग्रप्प रजादा हसणा लग्गा
देयो साली साहडा लाग
देयो साली साहडा लाग रजादा देयो साली साहडा लाग
ग्रसा जे दित्ता नौलखियां माहणू
डोली पाई लेई जाग्रो
डोली पाई लेई जाग्रो रजादा डोली पाई लेई जाग्रो

यह तो दो चार ही लोकगीत लिखे है। परन्तु कांगड़ी लोकगीतो का भंडार तो कभी खाली न होने वाला हैं। जन्म से लेकर मरण पर्यन्त हर गीत ग्रपनी कहानी स्वयं कहता हैं।

10' लोग्रर बाजार
शिमला

हिमाचल और हिमाचली प्राचीन परम्परा--एक पर्यटकीय पर्यालोचन

○ डा० सत्य पाल शर्मा

हिमाचल प्रदेश एक स्वप्नमयी मादक और मृदुल भूमि है। यह शान्त और शालीन जीवन का एक शानदार पलना है। यह प्रभु की अद्भुत रचना और प्रकृति का रमणीय लोक है। यह एक ऐसा पर्वत-प्रदेश है जिस की हर वस्तु सुन्दर और सलोनी है। इस के कण-कण में आकर्षण है। हिमाचल प्रदेश में मानव सभ्यता अपने सहज सुन्दर रूप में दिखाई देती है। इसकी ओस दृश्यावली मे एक अलौकिक जीवन्तता और ताजगी है।

महाकवि कालिदास ने जिस हिमालय को देवतात्मा कहकर पुकारा है, हिमाचल प्रदेश उसी का एक मनमोहक भाग है। मेघदूत की यक्षप्रिया यहीं कहीं रहती थी और अलकापुरी का सौंदर्य भी यहीं बिखरा पड़ा है। यह गुह्यकों, विद्याधरों, यक्षों और किन्नरों की वह भूमि है जिस के विषय में प्राचीन भारतीय समाज ने एक रहस्यमयी जिज्ञासा प्रकट की थी और सुन्दर काव्यों के वितान तने थे। इसी की शाश्वत हिमरेखा के आस-पास कालिदास ने भगवान शिव का धवल अट्टहास देखा था। शिववाहन नन्दी के भी यहां प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं। पाण्डवों के स्वर्गारोहण के सोपान भी हम यहां देख सकते हैं और यहीं कहीं दिखाई देगा वह देवदारु जिसे भगवान भूतनाथ ने अपनी सन्तान का प्यार दिया था।

हिमाचल प्रदेश प्रकृति का मनोरम क्रीडास्थल है। द्रुतगामिनी नदियां, झाग उगलते प्रपात, छल-छल करते झरने, शान्त गंभीर सरोवर नगीनों की तरह झिलमिलाती झीलें तथा आकाश से बातें करते हिमशिखर मन को बरबस अपनी ओर खींचते हैं। शुद्ध स्वच्छ जल के सोते, शीतल स्निग्ध वायु तथा वनों की मादक हरियाली पर कौन मुग्ध नहीं होगा। पर्वतों का गौरव गान करते और गिरिकन्दराओं में गंभीर गर्जन करती नद हमारी एक अत्यन्त मूल्यवान सम्पदा हैं। गहरे मौन में डूबी ऊंची पर्वत श्रेणियां, बर्फ-लदी ऊंची उपत्यकाएं धीरे-धीरे सरकते रहने वाले विशाल हिमनद, अत्यधिक ऊंचाई पर स्थित ठण्डी मरुभूमियां भूर्ज पत्रों के बड़े बड़े वन और इन सब से ऊपर फैला, आकाश का गहरा नीला चंदोवा, यह सब शरीर में रोमांच सा पैदा कर देता है।

हिमाचल, एक बहुरंगी प्रदेश है। यहां हर प्रकार का जलवायु और हर प्रकार की भूमि है। ठण्डे से ठण्डे और गर्म क्षेत्र यहां पाए जाते हैं। किन्नर देश, कुगति, पांगी, स्पीती, मांगला, ग्याबंग हांगो, लिपा आदि स्थानों की खून को जमा देने वाली ठंडी खुश्क हवाएं भी यहां मिलती हैं और मादक शीतोष्ण वासन्ती बयार वाले भटियात, कांगड़ा, बिलासपुर, मण्डी, कुल्लू, सोलन, नाहन आदि क्षेत्र भी यहां देखे जा सकते हैं। सदैव एक गहरे सन्नाटे में डूबी निर्जन-निस्पन्द उच्च भूमियां भी यहां हैं और बाघों, भेड़ियों सियारों तथा विविध प्रकार के पक्षियों के स्वरों से प्रतिध्वनित होने वाली घाटियों का भी हम दर्शन कर सकते हैं। यहां रूखी-सूखी दैत्याकार चट्टानों, सूने ढांक-ढंकारों और हिमानियों की विनाशलीला की शिकार उत्यकाओं वाले प्रदेश भी हैं और नन्दनवन का दृश्य प्रस्तुत करने वाली विस्तीर्ण वनराजियां भी हैं। यहां प्रकृति का कठोरतम और अति भयंकर रूप भी पाया जाता है और उसकी उत्तेजक छवियां भी दिखाई देती हैं। यहां सूर्य किरणों के स्पर्श से वंचित ठण्डी अन्धेरी नदी कन्दराएं भी हैं और सूर्यरथ को सारा दिन चलते देखने वाले लम्बे-चौड़े मैदान भी हैं। ऐसे क्षेत्र भी हैं जहां वर्षा के बादल अपनी सारी सम्पति लुटाए बिना हटते ही नहीं और जहां वर्षा के संगीत को कहीं विराम नहीं मिलता। उधर दूसरी ओर ऐसी भूमियां हैं जहां पानी की एक भी बूंद नहीं गिरती और शीत ऋतु आने पर बर्फ के फाहों के मिस आकाश से अप्सराएं उतरती हैं। यहां सदैव बर्फ की चादर ओढ़ कर सोए रहने वाले क्षेत्र भी हैं और मानव सन्तानों के मधुर स्वरों से गूंजते रहने वाले जीवन्त क्षेत्र भी हैं।

हिमाचल प्रदेश के जन-जीवन में भी बड़ी विविधता है। यहां रहने वाले लोगों के खान-पान, बोल चाल, रहन-सहन, वेश-भूषा, रीति-रिवाज आदि भिन्न-भिन्न हैं परन्तु इनमें पाई जाने वाली भाव और विश्वास की एकता इन्हें एक सुगठित समाज के रूप में प्रस्तुत करती है। धार्मिक सहिष्णुता, साम्प्रदायिक सहनशीलता, दयालुता, करुणा, अतिथि सत्कार, सहयोग, सद्भाव, सदाशयता, मैत्री आदि भाव इन्हें एक दूसरे से भी और विशाल भारत भूमि से भी जोड़ते हैं। यह प्रदेश विभिन्न प्रकार के धर्मों, संस्कृतियों और सामाजिक विश्वासों का संगम है। पर्वतीय जीवन में सर्वत्र पाई जाने वाली निष्कपटता, निश्छलता सरलता और सहजता ही एक ऐसा सूत्र है जो यहां रहने वाले लोगों को एक माला का रूप देता है। यहां के लोग रारंग, ताशीगंग, ताबो आदि बौद्ध मठों के प्रति भी श्रद्धा रखते हैं और मणिमहेश, श्रीखण्ड, कैलाश आदि शिवभूमियों की यात्रा करते हैं। भगवान अवलोकितेश्वर और आचार्य पद्मसंभव के प्रति भी ये श्रद्धा रखते हैं। और देवी हिडिम्बा, भीमाकाली, चामुण्डा आदि माताओं पर भी श्रद्धा सुमन चढ़ाते हैं। ये लोग एक ही साथ बौद्ध भी हैं और हिन्दु भी। इधर कांगड़ा के हिन्दू भगवान ऋषभदेव तथा अन्य जैन तीर्थंकरों के प्रति भी श्रद्धा रखते हैं। इनके हृदय में मन्दिरों के प्रति भी श्रद्धा है और गुरुद्वारों का भी ये अपने ही तीर्थस्थलों के रूप में मान करते हैं। हिमाचल के लोगों ने ग्राम देवताओं और कुल-देवताओं को भी मान्यता दी है और अवतारी विभूतियों को भी अपने हृदय में प्रतिष्ठित किया है। इन्होंने भारत की धर्मप्राणता को अक्षुण्ण बनाए रखने में अपना मौलिक योगदान किया है। यहां आज भी शास्त्रवेत्ता कर्मकाण्डी ब्राह्मणों की कमी नहीं है। आर्यसमाज का भी यहां काफी प्रचार है। सांई बाबा और सत्य सांई भक्त भी यहां मिल जाएंगे। राधास्वामी, नामधारी आदि मतों को मानने वाले भी हमारे इस प्रदेश में फल-फूल रहे हैं। इन के अतिरिक्त गूजर, गद्दी, पंगवाले

किन्नौरे आदि वर्ग भी यहां पाए जाते हैं। इस पर्वतीय क्षेत्र में आज भी वृक्षों के प्रति एक श्रद्धा का भाव पाया जाता है और नदियों में तथा पर्वत शिखरों पर देवताओं का वास माना जाता है। हिमाचल वासी सरोवरों, झरनों और वनस्थलियों में भी देवताओं का दर्शन करते हैं। यहां लगभग सभी पुरातन हिन्दू विश्वास सुरक्षित हैं।

धन्य है यह भूमि जो अत्यन्त प्राचीन काल से ही भारतीय मनीषा का आकर्षण केन्द्र रही है। हमारे पुरातन ऋषियों ने इसे अपनी तपोभूमि माना था और आज भी यह तपस्वी सिद्धों और साधकों का आवास है। अपहृत सीता की खोज के प्रकरण में महर्षि वाल्मीकि ने इसका विस्तार से वर्णन किया है। महाभारत के रचयिता महर्षि वेदव्यास इस भूखण्ड के कण-कण से परिचित प्रतीत होते हैं, क्योंकि इसका कोई ऐसा स्थल नहीं जिसका उन्होंने वर्णन न किया हो। महाभारत में त्रिगर्तों के शौर्य और युद्धकौशल का बड़े विस्तार से वर्णन किया गया है। पाषाण योधी सेनाओं के संगठन और सचालन के प्रसङ्ग में भी इस पर्वतीय भूमि को याद किया गया है। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में गुदमें, नमदे, शाल, मधु आदि वस्तुओं की भेंट चढ़ाने वाले नरेश भी यहीं के हैं। अश्ववाहिनियों के नायक और प्रशिक्षक भी यहीं के बताये गये हैं। महाभारत के युद्ध के लिए प्रयोग में लाए जाने वाले उत्तम जाति के घोड़े और भारवाही खच्चरें यहां की ठण्डी मरुभूमियों से आती दिखाई गई हैं। महर्षि व्यास के समान ही कालिदास और भवभूति ने भी भारत के इस भूभाग को नमन किया है। भारतीय वाङमय में इसे शिवभूमि के रूप में भी स्मरण किया गया है। हमारे कवियों और लेखकों ने इसे शिवसंकल्प वाले, सीधे-सादे और मनस्वी लोगों की भूमि माना है। इन्हें यहां के लोग भगवान आशुतोष जैसे सरल, सौम्य, मृदुल, भोले तथा औघड़ दानी लगते हैं।

हिमाचल प्रदेश शान्ति का घर है सादगी का स्रोत है और सौजन्य का मूर्त रूप है। प्रकृति की रमणीयता ने यहां के लोगों को भी मानोअपने ही रूप में ढाल दिया है। यहां का लोक जीवन दिखावे और आडम्बर से कोसों दूर है। भारतीय संस्कृति के निर्माण और विकास में इनका एक मौलिक योगदान है। समन्वय, समदर्शिता, संवेदनशीलता आदि गुण यहां पर्याप्त मात्रा में पाए जाते हैं। भारतीय धर्म और दर्शन के गौरव ग्रन्थों की मनोभूमि और प्रेरणा का आधार यही भूमि है। साहित्य के महानतम-ग्रन्थों की रचना भी यहीं पर हुई थी। यहां के मानवीय रूप की अकृत्रिम मोहकता और उन्मुक्त निसर्ग की सुकुमार सुषमा ने कवियों में सौंदर्य दृष्टि और उर्वरकल्पना का विकास किया और साहित्य के गौरव ग्रन्थ लिखने में सफल हुए। चरक, सुश्रुत और वाग्भट्ट जैसे महान चिकित्सा गुरुओं ने इस क्षेत्र को अपनी साधना भूमि बनाया और अनेक जीवनदायिनी तथा स्वास्थ्य वर्धक औषधियों की खोज कर चिकित्सा शास्त्र में ऊंचे कीर्तिमान स्थापित किए। यहां के कलाकारों ने भारतीय कला को अपनी एक मौलिक देन दी है। कांगड़ा कलम को कौन नहीं जानता और ताबो के भितिचित्रों से कौन प्रभावित नहीं होगा। यहां के कल्पनाशील, धर्मप्राण और प्रतिभाशाली चित्रकारों ने रामायण, महाभारत, पौराणिक वाङ्मय तथा मध्ययुगीन भारतीय साहित्यको रंगों में साकार कर दिया है।

हिमाचल का हस्तशिल्प भी अपना सानी नहीं रखता। प्राचीन मन्दिरों, हवेलियों, देवालयों और गोम्पाओं में पाया जाने वाला लकड़ी की खुदाई का काम यहां के कारीगरों और कलाकारों की सौंदर्याभिरुचि, लगन प्रतिभा और श्रमशीलता की कहानी कहता है। हमारे इन शिल्पियों ने पत्थरों मे संगीत भर दिया है और भवनों में एक रोमानी कविता लिख दी है। यहां के धातु शिल्पकारों ने विविध धातुओं के मिश्रण में अपनी अद्‌भुत कारीगरी दिखाई है। इन की बनाई देव प्रतिमाएं शान्ति और सौम्यता, समानुपातकता और सौंदर्य तथा आशीर्वाद और आशावादिता जैसे भावों की स्पष्ट व्यंजना करती है। पांगी, स्पीती और किन्नौर के कारीगरों ने मिश्रित धातुओं के पात्रों एवं सजावटी वस्तुओं पर जो नक्काशी और खुदाई का काम किया है, वह हमें आश्चर्यचकित कर देता है। इसके अतिरिक्त पत्थरों पर धर्म प्रवचनों, सूत्रों और मन्त्रों की खुदाई का कार्य बड़ी कुशलता से किया गया है। मन्दिरों के शिखर निर्माण में शुद्ध स्थानीय पद्धति, देवदारों की अनुकृति जैसी बनावट, बौद्ध गोम्पा शैली तथा पूर्वी भारत की निर्माण पद्धति, ये सब शैलियां अपनाई गई है। हिमाचल के विभिन्न स्थानों पर पाई जाने वाली पत्थर की मूर्तियां भी बड़ी अद्‌भुत है। बावड़ियों, कुओं, पनघटो और घाटों के निर्माण में भी यहां के लोगों ने अपनी कला प्रियता का परिचय दिया है।

कुटीर उद्योगों के विकास में भी हिमाचल का बड़ा अद्‌भुत योगदान रहा है। यहां के बने नमदे, गुदमे, पट्टियां पट्टू, शाल, चादरें, दोहड़ू तथा ऐसी ही बहुत सी अन्य वस्तुएं समूचे भारत में बड़ी ललचाई और प्रशंसा भरी नजरों से देखी जाती हैं। श्वेत और श्याम रंगों की ऊन के मिश्रण की इनकी कला भी बड़ी अद्‌भुत है। भरमौर के गद्दियों द्वारा बनाए गए चारखाने पट्टू इतने मजबूत, सुन्दर, देरपा और गर्म होते है कि लोग इन्हें हर कीमत पर खरीदने को तैयार रहते है। हिमाचल का मधु अपने स्वाद, अपनी शुद्धता और औषधीय गुण के लिए विख्यात है। यहां के लोग मौर पालन और मधुसंचय की कला में परम्परागत रूप में ही बड़े प्रवीण हैं। ऊपरी महासू के पन्द्रह बीस क्षेत्र, कुल्लू का आऊटर सिराज, शिमला का काशापाट तथा चम्बा का चुराह क्षेत्र इस उद्योग के लिए विख्यात हैं। नूरपुर और कांगड़ा में रेशम का उद्योग भी अब विकास की ओर बढ़ने लगा है।

हिमाचल प्रदेश समृद्ध होने पर भी पिछड़ा हुआ कहा जाता है परन्तु हमारे विचार में आर्थिक विपन्नता के बावजूद भी यह प्रदेश सभ्यता और संस्कृति की दृष्टि से समृद्ध है। यह उन प्रदेशों और क्षेत्रों की अपेक्षा कही अधिक समृद्ध है जिन्होंने आधुनिकता की अन्धी दौड़ में पड़ कर अपनी जड़ें ही काट डाली हैं। यहां के लोग उन लोगों से अधिक सभ्य हैं जो धर्म के नाम पर घृणा का प्रचार करते हैं और अपने ही भाईयों को गाजर मूली की तरह काट डालते हैं। यह प्रदेश उन प्रदेशों से अधिक सुसंस्कृत है जिन के लोग अपने क्षेत्रीय, वर्गगत और साम्प्रदायिक स्वार्थों के लिए धर्मादेश जारी करवाते हैं और देश में पृथकतावाद फैलाते है। यहां के लोग उन लोगों से अधिक अच्छे हैं जो दूसरों के धन पर गृध दृष्टि रखते हैं और दहेज के लोभ में अपने देश की बहु बेटियों को जिन्दा जला देते हैं। हिमाचली लोगों में स्वभाव का बनावटीपन नहीं है, अन्धानुकरण की प्रवृत्ति नहीं है और वे भौतिक साधनों के दीवाने भी नहीं हैं, आधुनिकता के नाम पर अपने

स्वत्व को नहीं छोड़ते हैं, अपने स्वाभिमान को तिलांजली नहीं देते हैं और अपने श्रेष्ठ स्वदेशी परम्पराओं से मुंह नहीं मोड़ते हैं। भौतिक उन्नति और इन्द्रिय सुख के प्रलोभन में अपने धर्म का परित्याग नहीं करते और न अपनी भाषा का ही तिरस्कार करते हैं। अपने शहरीपन के अभिमान में चूर लोग यहां से सभ्यता और शालीनता की शिक्षा ले सकते हैं।

हिमाचल प्रदेश ने यद्यपि अपनी स्वभावगत विशिष्टता और सांस्कृतिक पहचान की रक्षा में कोई कसर नहीं उठा रखी है तो भी सभ्यता के आधुनिकीकरण ने इस पर कुछ बुरा प्रभाव अवश्य डालना शुरू कर दिया है। अतः अपने पूर्वजों द्वारा सौंपी गई विरासत की रक्षा करने की आज पहले से कहीं अधिक आवश्यकता है। नर-नारी संबन्धों की पवित्रता में विश्वास करने वाले पर्वतीय लोग दहेज की कुरीति को अपनाने लगे हैं। युवा पीढ़ी ने मां, बहन, बेटी आदि पवित्र पारिवारिक संबन्धों को भुला दिया है और उन्हें केन्द्र बना कर गालियों और अपशब्दों का प्रयोग शुरू कर दिया है। इस वर्ग में शराबखोरी और धूम्रपान की बुराई भी बढ़ रही है। पश्चिमी वेश भूषा की तुलना में यहां के पारम्परिक पहरावों को घटिया माना जाने लगा है।

विवाहोत्सवों तथा अन्य पारिवारिक समारोहों पर गाए जाने वाले गीतों की विविधता तो घट ही गई है, वे बेसुरे भी होने लगे है। बड़े मनोयोग और श्रम से सीखी जाने वाली लोकनृत्यों की शास्त्रीय पद्धतियां अब लुप्त होती जा रही है। पुराने साज भी अब बहुत कम दिखाई देते है। सामूहिक यात्राओं का चलन अब घट रहा है और गांवों के यज्ञ तथा प्रीतिभोज भी कम हो गए हैं। जन्म दिन आदि मनाने की शुद्ध भारतीय पद्धिति को त्याग कर कुछ पढ़े-लिखे लोग मोमबत्तियां बुझाने और केक काटने वाली अन्धविश्वासमयी पश्चिमी पद्धति अपनाने लगे हैं।

हिमाचल प्रदेश के स्थानीय पकवान अब लुप्त होने लगे हैं। इससे भोजन की पौष्टिकता में तो कमी आई है, इसके स्वाद तथा इसकी विविधताजन्य रुचिता का भी नाश हुआ है। स्थानीय भोजन की तैयारी संबन्धी सारा उपक्रम और पुरानी तरह की व्यस्तताएं अब नहीं रही। कोदा, चौलाई, फा-फरा, कगनी, चीना-चावल, ओगला, स्वांक आदि अनाजों के पकवान अब बहुत कम दिखाई देते हैं। निशास्ते से बने खाद्य पदार्थ पता नहीं कहां चले गए। चिलगोजा, अखरोट, बादाम आदि की चाय कहीं नहीं मिलती। इन स्थानीय पकवानों के लुप्त होने के कारणों में नौकरी-पेशा स्त्री-पुरुषों की सुविधा-परस्ती, बाबू वर्ग की कुण्ठा और अन्धानुकरण की प्रवृत्ति मुख्य हैं। इस के अतिरिक्त ईंधन के परम्परागत साधनों की कमी तथा इन्हें तैयार करने के लिए आधुनिक मशीनी उपकरणों की अनुपयुक्तता भी बड़े कारण है। समया-भाव, सुस्ती और साधनहीनता भी कारण हैं। परन्तु हमें यह जरुर सोचना चाहिए कि इससे हमारा जीवन सीधासपाट और एकरस बन जाएगा। संस्कृति और परम्परा की रक्षा तो आधुनिक रहते हुए भी की जा सकती है और यह अवश्य ही की जानी चाहिए।

द्वारा, श्री बलवन्त सिंह ऐडवोकेट
१७९-श्यामनगर, धर्मशाला (हि० प्र०)

कुल्लू में नोड़ जाति का प्रादुर्भाव तथा काहिका

● चुनी लाल

कुल्लू के सम्बन्ध में प्राचीन साहित्य से कोल या किरात जाति का ही उल्लेख प्राप्त होता है। वर्तमान समय में राजपूत, ब्राह्मण, महन्त, ठाकुर, कोली तथा हीर आदि प्रमुख हैं। परन्तु कुल्लू की सबसे अल्पसंख्यक जाति नोड़ है। ये ब्राह्मणों से अधम मानी जाती हैं। जैसे की हिमाचल के अन्य क्षेत्रो में चारज ब्राह्मण होते हैं। इनके परिवार कुल्लू में न के बराबर ही हैं। वैसे एक दो गांव भी इनके अपने हैं। इस जाति का यहां काफी अधिक महत्व है। इनके रीतिरिवाज तो कुल्लू के अन्य लोगों के समान ही हैं। परन्तु ये लोग अपनी जाति के भीतर ही विवाह कर सकते हैं। इनका प्रमुख व्यवसाय भी कृषि ही है। इनके परिवार की भी ब्राह्मणों की भांति अपनी-अपनी यजमानी होती है। लोगों ने कुल्लू को यजमानी के लिए अलग-अलग क्षेत्रों में बांट रखा है। इस जाति की तुलना तांत्रिकों से की जा सकती है। क्योंकि यहां के ग्रामीण इनसे तांत्रिकों वाला कार्य लेते हैं। यदि किसी घर में प्रेत बाधा उत्पन्न हो जाती है या अन्य कोई कष्ट आन पड़ता है, तो लोग या देवता से परामर्श करते हैं या फिर नोड़ को बुलवा कर उससे उस बाधा का निवारण करवाते हैं। शायद इसी तन्त्र विद्या के कारण ये ब्राह्मणों से अधम माने गए हैं।

इस जाति का सबसे महत्वपूर्ण योगदान कुल्लू में मनाए जाने वाले प्रसिद्ध मेले काहिका में होता है। काहिका मेला या उत्सव कुल्लू में फागली से बहुत अधिक महत्व रखता है। क्योंकि इस मेले का उद्देश्य गांव की प्रेत बाधा या अन्य कष्ट निवारण माना जाता है। काहिका शब्द का सही अर्थ तो यहां ज्ञात नहीं है। परन्तु इसका अर्थ "व्याधियों का शमन" यानि कष्टों का निवारण लिया है। परन्तु शिरढ़ के लोग काहिका का अर्थ "पाप का प्रायश्चित" मानते हैं क्योंकि वहां पर काली नाग के साथ कुछ ऐसी ही घटना घटी थी, जिसके प्रायश्चित स्वरूप उसे हर तीसरे वर्ष काहिका मनाना पड़ता है। इसका अर्थ जो भी रहा हो लेकिन इस उत्सव को कुल्लू में विशिष्ट स्थान प्राप्त है।

कुल्लू में दो प्रकार के काहिके होते हैं। एक बड़ा काहिका तथा दूसरा छोटा काहिका। कुल्लू में अधिकतर काहिके सावन मास में मनाए जाते हैं। क्योंकि हमारे तन्त्र साहित्य सावन-भाद्रपद माह तान्त्रिक सिद्धियों व प्रेत सिद्धियों को सिद्ध करने के लिए उपयुक्त माने गए हैं। केवल शिरढ़ काहिका ज्येष्ठ मास में मनाया जाता है। छोटे काहिकों में या तो देवता दिन निश्चित करता

है या फिर वे ग्रीष्म तथा वर्षा ऋतु में मनाए जाते हैं। लोक विश्वास के अनुसार काहिकों का आरम्भ कुल्लू में नारायण भगवान ने किया था तदुपरान्त इसे ऋषियों मुनियों ने अपनाया। अब उनके स्थान पर उनके मन्दिरों में ये मनाया जाता रहा है।

एक जनश्रुति के अनुसार भगवान नारायण को कोढ़ हो गया था जिसके निवारण हेतु वे आदिकाल में नरमेध यज्ञ कर रहे थे। परन्तु असुर उस यज्ञ में बार-बार विघ्न डाल रहे थे। नारायण दैत्यों के इस कृत्य से बहुत परेशान थे। आखिर उन्होंने ब्रह्मा का स्मरण किया, ब्रह्मा स्मरण करते ही उपस्थित हो गए तो नारायण ने यज्ञ को सम्पूर्ण करवाने का उपाय पूछा। इस पर ब्रह्मा ने उन्हें बतलाया कि इन्द्रलोक में नौड़ नामक जाति के दो दम्पति रहते हैं। अगर कोई जाकर उन में से एक जोड़ा पृथ्वी पर ले आए तो यज्ञ की पूर्ति सम्भव हो सकती है। भगवान नारायण यह जान कर प्रसन्न हो गए। और वे इन्द्र लोक की तरफ चल पड़े।

इन्द्र लोक पहुंच कर उन्हें पता चला कि उन दो नौड़ेत्रि का नाम हितरू और पवित्रु था तथा उनकी नौड़नियों का नाम चही तथा चकरी था। श्री नारायण ने उन्हें पूरे इन्द्र लोक में ढूंढा परन्तु वे कहीं नहीं दिखाई दिए। इस पर नारायण को क्रोध आ गया, और उन्होने उसकी झोंपड़ी में आग लगा दी। आकाश में धुंआ देख कर दोनों दम्पति लौट आए। घर के समीप पहुँच कर उन्होने अपनी झोंपड़ियों को जलते देखा तो रोने लगे। दोनों दम्पत्ति विलाप करते हुए व एक दूसरे से कहने लगे कि झोंपड़ी तो हम फिर भी बना लेंगे पर हमारे डमरू व खड़ताल जल गए हैं वे दुबारा वैसे नहीं बन पाएंगे। अब हमें इन्द्र के दरबार से जो गोखा भर (तर्जनी उंगली व अंगुठे को पूरा फैलाने पर जो स्थान उनके जोड़ पर बनता है उसे स्थानीय भाषा में गोखा कहा जाता है) सोना मिलता है वह भी नहीं मिल पाएगा। इस पर नारायण भगवान ने उन्हें सांत्वना देते हुए बतलाया कि आप लोग शांत हो जाइए क्योकि आपके डमरू व खड़ताल मेरे पास सुरक्षित पड़े हैं। उन्हें मैंने आग लगाने से पूर्व ही निकाल लिया था। इस पर नौड़ दम्पति प्रसन्न हो गए। उन्हे प्रसन्न देख कर नारायण ने उन्हें कहा कि वो मेरे यज्ञ को सम्पूर्ण करवाने के लिए उनके साथ पृथ्वी पर चले। इस पर नौड़ो ने कहा कि हम तो प्रतिदिन इन्द्र के दरबार में गोखा भर सोना पुरस्कार स्वरूप पाते हैं और उसी में अपनी आजीविका चलाते हैं हम चारों तो आपके साथ नहीं चल सकते परन्तु यदि इन्द्र की आज्ञा हो जाए तो एक जोड़ा आपके साथ चल सकता है। भगवान नारायण उन्हें देवराज इन्द्र के दरबार में ले गए। सारी बात सुन कर इन्द्र ने एक दम्पति को जाने की सहर्ष आज्ञा दे दी।

पृथ्वी पर आ कर नारायण ने पुन: यज्ञ आरम्भ किया। नौड़ दम्पति ने लकड़ी के चार शहतीर मंगवाए उन्होंने उन चार शहतीरों को वेदी के ऊपर वर्गाकार रूप में उठा लिया तथा उस पर एक कपड़ा डाल दिया पूरे यज्ञ के दौरान उस दम्पति ने उन शहतीरों को अपनी चार कनिष्ठ उंगलियों पर थामे रखा। इस दौरान कोई भी असुर उनके यज्ञ के समीप आने का साहस नहीं कर सका। यज्ञ के सम्पूर्ण होने पर नारायण प्रसन्न हुए तथा उन्होने नौड़ों को बहुत सी दान दक्षिणा दे कर विदा कर दिया। दक्षिणा मिलने के पश्चात् बिना कुछ कहे नौड़ दम्पति ने इन्द्र लोक

की तरफ प्रस्थान कर दिया। उनके जाते ही नारायण का कोढ़ दूर हो गया। पूरे शरीर पर दृष्टिपात करने पर नारायण ने पाया कि उनकी तर्जनी उंगली का कोढ़ नहीं गया था। यह देखते ही नारायण फिर भागे. आगे एक पुल पर पहुंच कर उन्हें रोक लिया, तथा तर्जनी उंगली के कोढ़ के बारे में पूछा, इस पर नौड़ो ने उन्हें बतलाया कि आपने हमें दक्षिणा में डोरी तथा लुगड़ी (लुगड़ी कुल्लू में बनने वाली चावल की शराब है) नहीं दी है। भगवान नारायण उन्हें क्षमा याचना करके पुनः वापिस ले आए। तथा दक्षिणा में ढेर सारी डोरी व लुगड़ी दी। इस दक्षिणा से नौड़ दम्पत्ति प्रसन्न हुए और नारायण की तर्जनी उंगली का कोढ़ भी दूर हो गया। फिर नौड़ दम्पति ने इन्द्रलोक की तरफ प्रस्थान किया।

उनके प्रस्थान करते ही यज्ञ में आए ऋषि मुनियों ने विचार किया कि नारायण तो अपने यज्ञ को सम्पूर्ण करवाने के लिए इन्द्र से नौड़ो को लाए परन्तु अगर हमें यज्ञ करना होगा तो हमें भी इन्द्र से नौड़ मांगने होंगे उससे तो अच्छा है कि इन्हें इन्द्र लोक ही वापिस न जाने दिया जाए। ऋषियों को ज्ञात था कि अनुरोध करने पर तो ये वापिस नहीं आएगे परन्तु इन्हें किसी युक्ति द्वारा ही पृथ्वी पर रखा जा सकता है। उन्होंने एक कटोरे में मन्त्र युक्त तेल भर दिया। और नौड़ो के पीछे भागे नौड़ उस समय तक इन्द्र लोक के मुख्य द्वार तक पहुंच चुके थे। ऋषियों ने भाग कर उन्हें रोक लिया और कहा कि नारायण ने आपको एक वस्तु और भी देनी थी जो कि रह गई है। इस पर नौड़ों ने कहा कि अब हमें कुछ भी नहीं चाहिए। ऋषियों ने कहा कि नारायण ने आपको यह तेल भेजा है। आप ये ग्रहण करें नौड़ों ने उन्हें बतलाया कि तेल उनके दक्षिणा के विधान में नहीं है। और वे आगे बढ़ गये। ऋषियों ने अपनी असफलता देख कर अगला उपाय किया और सारा तेल उनके सिर पर डाल दिया जिससे कि नौड़ बेहोश होकर गिर पड़े, तथा ऋषि उन्हें उठाकर पृथ्वी पर वापिस ले आए। इसके पश्चात इन्हें इसी धरती पर रहना पड़ा। इस प्रकार इस धरा पर नौड़ जाति का प्रादुर्भाव हुआ।

शिरढ में नौड़ों से सम्बन्धित एक और कथा है, कहा जाता है कि काली नाग साधु का वेश धारे हुए कहीं जा रहे थे। रास्ते में उन्हें एक नौड़ ब्राह्मण मिला। साधु ने नौड़ को भी साथ ले लिया और चलने से पूर्व उन्होंने एक बिना छिद्र की सिल नौड़ की पीठ पर रखवा दी और कहा कि ये सिल आगे चल कर नमक पीसने के काम आएगी। परन्तु सिल काफी भारी थी। नौड़ उसे ढोते-ढोते थक गया, और उसने ये सिल गांव के पास फैंक दी। और वहां से एक हल्की सी सिल उठा कर चल पड़ा। कहा जाता है कि बैंची गांव में ये सिल अभी तक पड़ी हुई है।

आगे चल कर शिरढ़गांव आ गया। उस समय शिरढ़ में राणो का राज्य था। जो कि अधिकतर भोग विलास में ही व्यस्त रहते थे। साधु ने नौड़ को एक स्थान पर बिठा दिया। और स्वयं गांव में भिक्षा मांगने के लिए निकल पड़े साधु ने उधर जा कर भिक्षा में दूध की मांग की। लोगों ने दूध देना तो दूर रहा, उल्टे ही साधु को दुत्कारा। चलते-चलते वह राणों के महल में पहुंच गया। साधु ने उनसे भी दूध मांगा। इस पर राणों ने कहा कि दूध तो क्या हम आप को आधा राज्य दे देंगे यदि तुम हमारे साथ जुआ खेलो और उसमें जीत कर दिखाओ। साधु वेषधारी काली नाग ने ये शर्त भी स्वीकार कर ली। जुआ प्रारम्भ हुआ और साधु हर बाजी

जीतता ही चला गया और अन्त में उसने सारे राणों को हरा डाला। राणों को अपना ये अपमान सहन न हुआ। उन्होंने आधा राज्य तो देना दूर रहा पर उल्टे ही साधु को मार डालने की धमकी देने लग गये। और धक्के मार मार कर उसे घर से बाहर कर दिया। इस बात पर काली नाग को बहुत क्रोध आ गया।

साधु आगे चला तो उसे एक बुढ़िया की झोंपड़ी दिखाई पड़ी, वहां पर भी साधु ने दूध मांग लिया। इस पर बुढ़िया ने विनती भरे स्वर में कहा कि महाराज मेरी गाय तो ब्याने को है और हां इसके अतिरिक्त कुछ और चाहिए तो मैं दे सकती हूं। साधु महाराज ने कहा कि गोशाला में जा कर तो देख आओ। इस बात पर बुढ़िया अपनी गोशाला की तरफ गई। तो पाया कि गाय के बछड़ा हुआ है। यह देख कर बुढ़िया भागी-भागी बाहर आयी उस महात्मा के दर्शन करने, पर वे तो जा रहे थे। बुढ़िया ने उन्हें रोकने का प्रयास किया पर साधु ने केवल इतना कहा "थोड़ी देर पश्चात् एक भयकर बाढ़ आएगी तू और तेरा परिवार छात्र के नीचे बैठ जाना। तभी तुम्हारी रक्षा हो पायेगी" और साधु चला गया। साधु महाराज पहाड़ी पर चढ़ गये और इतने जोर की वर्षा कर दी कि सारा शिरढ़ व महल ढह कर बह गये। केवल छाज के नीचे छिपा बुढ़िया का परिवार बच पाया।

अब साधु का क्रोध शांत हो गया। क्रोध शांत होने पर नौड़ की याद हो आयी। जिसे वह एक पत्थर पर बिठा आया था। अब उसे ढूंढने की सोची पर सब कुछ तो बह चुका था। कहां मिलता अब नौड़? फिर भी काली नाग आवाजें लगा कर, सीटियां बजा कर तलाश करने लगा काफी ढूंढने के बाद एक झाड़ी में उसका शव प्राप्त हो गया। उस निर्दोष के शव को देख कर काली नाग के दुःख की सीमा न रही। उसने पास के एक गांव से एक व्यक्ति को बुला कर नौड़ के परिवार को सूचित करने के लिए भेजा। वहां से नौड़ के पुत्र पुत्री व अन्य सम्बन्धीगण आ पहुंचे। नौड़ को मृत देखकर सभी ने विलाप करना आरम्भ कर दिया। साधु ने इस कृत्य के लिए नौड़ की बिरादरी से माफी मांगी। इसके पश्चात् सर्वसम्मति से निश्चय हुआ कि नौड़ की कन्या का साधु के साथ ही विवाह कर दिया जाए। और वह साधु हर तीसरे वर्ष प्रायश्चित के रूप में काहिका मनाए। साधुरूपी कालीनाग को ये सब स्वीकार करना पड़ा। तदुपरान्त नौड़ को उसी स्थान पर दफन कर दिया गया। और शिरढ़ में काहिका मनाने की शुरुआत हो गई।

वैसे तो कुल्लू के बहुधा मन्दिरों में काहिका मनाया जाता है। लेकिन शिरढ़ का काहिका काफी प्रसिद्ध है। काहिका मनाने का हर मन्दिर में एक समय अन्तराल होता है। किसी में तीसरे व किसी में पांचवे या सातवे वर्ष में मनाया जाता है। यानी। 3-5-7-9-11-13 वर्ष का अन्तराल होता है। काहिका हर मन्दिर में अपने ढंग और समय अन्तराल के साथ मनाया जाता है। परन्तु सभी मन्दिरों में बड़े काहिका का विधान लगभग एक जैसा ही है। काहिका मनाते समय आज किसी नौड़ परिवार को आमन्त्रित किया जाता है। उस गांव में रहने वाले देवता की पालकी सजाई जाती है। एक स्थान पर चार खम्बे गाड़ कर उस पर कपड़ा बांधा जाता है। इस कपड़े के मध्य में एक गोल छिद्र रखा जाता है। देवता की पालकी को मन्दिर से सजा कर धूम धाम से उस

पालकी को इस कपड़े के नीचे रखा जाता है। फिर लोग आकर अपने देवता के दर्शन करते हैं। प्रत्येक श्रद्धालु अपने घर से कुछ फल वगैरह ला कर उस कपड़े पर फैंकते रहते हैं। और उस बंधे हुए कपड़े को हाथ द्वारा स्पर्श करते हैं उक्त कपड़े को बांधना ही काहिका बांधना कहा जाता है। यदि इस काहिके में किसी समीपस्थ देवता ने भी आना हो तो वह भी आ जाता है। उस के आने पर स्थानीय देवता स्वयम् जा कर उस का स्वागत करता है। और काफी देर तक दोनों देवताओं में गुर के मध्य बातचीत होती रहती है। यदि दोनों देवताओं में कोई गिला शिकवा हो तो वो खड़े-खड़े ही दूर कर लिया जाता है। मिलन के बाद दोनों देवताओं की पालकियां काहिका के नीचे रख दी जाती है।

सूर्यास्त के साथ नौड को यज्ञोपवीत बांधा जाता है। कई स्थानों पर यज्ञोपवीत बांधने के समय व इससे पूर्व नौड़ द्वारा देवता को गालियां देने की प्रथा भी है। गालियां देते समय नौड़ का परिवार भी वहीं उपस्थित रहता है तथा वे भी देवता को मनचाही गालियां निकालते हैं। बांधे जाने वाले यज्ञोपवीत में धर्म लकड़ी भी बंधी होती है। जो की केवल मुर्दे को ही बांधी जाती है। अब काहिका में आए देवताओं की तरफ से एक-एक पगड़ी उस नौड़ के सिर पर बांधी जाती है। इसके पश्चात् नौड़ के हाथ में एक तलवार दी जाती है। नौड़ म्यान में से तलवार निकालता है, बायें हाथ में म्यान व दायें हाथ में तलवार निकाल कर खड़ा हो जाता है। कुछ देर तक देवता की स्तुति करने के पश्चात् वह तलवार व म्यान को पैरों के दोनों तरफ, तदुपरान्त कमर के दोनों तरफ, फिर कानों के साथ उपर खोपड़ी के दोनो तरफ स्पर्श करता है। नौड़ इस क्रिया को तीन बार दोहराता है। इस क्रिया के पश्चात् वह देवताओं की परिक्रमा करता है

काहिके के नीचे से फिर उसे दूसरे स्थान पर ले जाया जाता है। उस के साथ फिर धोती पहने सात व्यक्ति व पुजारी होता है। मेले में आए हुए अन्य श्रद्धालु भी साथ साथ चलते है परन्तु उन्हें नौड़ दिखाई न पड़े इसके लिए एक आदमी के पास आटे की टोकरी होती है। वह उसमें से मुट्ठी भर-भर कर दर्शकों की आंखों पर फैंकता रहता है। कुछ दूरी पर चल कर सारा जलूस रुक जाता है। यहां पर नौड़ के हाथ मिट्टी से धुलाये जाते हैं। इसके पश्चात् उसके हाथ में सात घी चुपड़ी रोटियां दी जाती है। वह उन रोटियों को तोड़ तोड़ कर चारों दिशाओं में फैंकता चला जाता है। लोक विश्वास के अनुसार ये कार्य भूत प्रेतों को शांत करने के लिए किया जाता है। रोटियां फैंकने के पश्चात् पुनः उसके हाथ मिट्टी से धुलाए जाते हैं। मन्त्र युक्त तीन छटांक घी एक बर्तन में डाला हुआ होता है। वह घी एक ही घूंट में नौड़ को पिला दिया जाता है। घी पिलाने के पश्चात् एक सुराही में देवता का जल नौड़ के हाथ में दिया जाता है। इस जल में से उसे तीन घूंट पीने होते है। तीसरा घूंट पीते ही नौड़ मर जाता है (अचेत हो जाता है स्थानीय भाषा में इसे नौड़ मरना कहा जाता है) कहा जाता है कि इस अवस्था में नौड़ में नाड़ी भी नहीं होती है। आंखों में आटा फैंकने का क्रम यथावत् ही चलता रहता है। नौड़ मरने के बाद भूमि पर गिरने से पूर्व तीन तीन आदमी दोनों तरफ तथा एक सिर को थामता है।

पुजारी के हाथ में एक नंगी तलवार होती है। वह उसे नौड़ पर घुमाता रहता है नौड़ पर तलवार घुमाने के बारे में लोक विश्वास है कि नौड़ मर चुका होता है, इसलिए उसके शरीर में कोई दुष्ट आत्मा प्रवेश न कर पाए। नौड़ को वही सात आदमी देवता के पास ले आते हैं। और उसे उठाए हुए ही देवता की परिक्रमा करते हैं। फिर देवता के सामने रख देते हैं। तत्पश्चात् पुजारी मन्त्र पढ़ना आरम्भ कर देते हैं। कुछ समय बाद नौड़ की चेतना लौट आती है। यदि नौड़ शीघ्र होश में न आए तो समझा जाता है कि इस क्षेत्र में प्रेत आत्माए अधिक हैं। कभी यदि पूरा प्रयास करने पर भी नौड़ की चेतना न वापिस लौटे और नौड़ की उसी अवस्था में मृत्यु हो जाए तो उस परिस्थिति में देवता की पालकी उसके सारे गहने व भण्डार का धन उस नौड़ के परिवार को दे दिया जाता है। कहा जाता है कि कई बार ऐसा हो चुका है। नौड़ के होश आने के बाद पुजारी व वे सात आदमी नौड़ सहित नृत्य करते हुए देवता के गिर्द ढाई चक्कर लगाते हैं। इसके पश्चात् नौड़ व उसके परिवार वाले नृत्य करना आरम्भ कर देते हैं धीरे धीरे मेले में आयी सभी स्त्रियां नृत्य करना प्रारम्भ कर देती हैं। कुछ समय बाद सभी पुरुष भी नृत्य में शामिल हो जाते हैं। सभी स्त्री पुरुष अश्लील गीत गाते हैं, अश्लील गालियां निकालते हैं। नृत्य करते करते ही सभी पुरुष स्त्रियों से पैसा मांगना आरम्भ कर देते हैं। यह नृत्य काफी रात गये तक चलता रहता है। आधुनिक युग की सभ्यता के सम्पर्क में आने के साथ-साथ कई गावों मे अश्लील गीतों का प्रचलन बन्द हो चुका है।

कई स्थानों पर छोटा काहिका मनाया जाता है। इसमें गांव का अपना ही देवता भाग लेता है। इसमें किसी नौड़ को भी आमन्त्रित नहीं किया जाता है। और न ही काहिका बांधा जाता है। केवल देवता द्वारा ही प्रजा का शंका समाधान होता है। गूर के माध्यम से देवता पूजा से अपने गिले शिकवे दूर करता है। छोटे काहिके में बाहर के गांव से लोग बहुत ही कम आते हैं, अधिकतर जनता अपने ही गांव की होती है। इस प्रकार के काहिके कुल्लू के लगभग 70% गांवों में मनाए जाते हैं।

बड़े काहिकों में बिजली महादेव व शिरढ़ के काहिके प्रसिद्ध हैं। इनका कुल्लू में विशिष्ट स्थान है। शिरढ़ का काहिका काली नाग द्वारा नौड़ को मारे जाने के प्रायश्चित में मनाया जाता है। इसमें लगभग हर कार्य बीरवार को ही मनाया जाता है जैसे की वैसाखी के पहले बीरवार को काहिके को मनाने का निर्धारण, दूसरे बीरवार को मशालों के लिए लकड़ी लाई जाएगी, तीसरे बीरवार को देवता के वाद्यों की सफाई इत्यादि कर नये सिरे से तैयार करना, चौथे बीरवार को मन्दिर की सफाई पुताई करना इत्यादि। फिर आठवें बीरवार को मुख्य काहिका प्रारम्भ होता है। इस काहिके के बांधने के लिए लकड़ी एक ही पेड़ की काटी होती है। यहां काहिके से एक रात्रि पूर्व जागरण होता है जिसमें की वहां आए देवताओं के गूरों द्वारा अपने देवताओं को अपने खून से चढ़वा देना होता हैं। इसी रात्री को नौड़ परिवार की स्त्रियां व गांव की लड़कियों द्वारा आए हुए देवताओं के स्वागत के लिए गीत रूप में वन्दना गाई जाती है। इस के पश्चात् पहले पुजारी द्वारा फिर नौड़ द्वारा देवता के पूजन के साथ जागरण समाप्त किया जाता है।

अगले रोज बीरवार के दिन बीरनाथ देवता, नारायण देवता, थार, तथा घूमल नाग आदि देवता पधारते हैं। फिर खोए नौड़ की तलाश का कार्य देवताओं द्वारा आरम्भ किया जाता है। लोगबाग सीटियां मारते हैं आवाजें लगाते हैं। कहा जाता है कि काली नाग ने भी नौड़ को इसी प्रकार खोजा था। इस प्रकार घूमते घूमते सब लोग एक मैदान में आ जाते हैं। जो कि काहिका के पास ही होता है। यहां आकर कारदार चारों दिशाओं में तीर छोड़ता है। और पांचवां तीर छोड़ते ही नौड़ अचेत हो जाता है। फिर पुरोहित एक बर्तन से कुछ जल उसके मुंह में डालता है। अब इसे कुछ लोग उठा कर काहिके के नीचे ले आते हैं यहां पर उसे देवताओं के सम्मुख रखा जाता है। कुछ देर के पश्चात् फिर नौड़ को होश आ जाता है। इस के पश्चात् एक बलि दी जाती है। तदुपरान्त काहिका खोल दिया जाता है।

अगले दिन शुक्रवार को जातर मनायी जाती है। उसके बाद बुधवार तक नौड़ को उसी गांव में ठहरना होता है। इस दौरान उसे गांव के हर घर में खाने के आमन्त्रण मिलते हैं। और बुधवार के दिन एक लघु मेले का आयोजन होता है उसके पश्चात् नौड़ को विदा कर दिया जाता है।

संरक्षक पुरातत्व
कला केन्द्र कुल्लू हि प्र.

हिमाचली लोक संगीत पर भौगोलिक स्थिति का प्रभाव

● इनाक्षी महाजन

कला और परिस्थिति का आपस मे घनिष्ठ संबंध रहता है। कोई भी कलाकृति अपने देश, काल, परंपरा और घटना चक्र से अछूती नहीं रहती। ये संबंध पूरक, प्रतिनिधिक, तद्भव अथवा विरोधी हो सकते हैं। कई बार भले ही कोई सीधा संबंध नजर न आए तो भी परिपेक्ष का कुछ न कुछ भाग कला को परिस्थिति से एक अदृश्य धागे से जोड़ता अवश्य है। इस रज्जु का काफी खोज के बाद ही पता चलता है। इस शोध कार्य को प्राय: निश्चित माप दंडों के अन्दर सीमित रख कर किया जाता है। सीमाकरण में एक जानी पहचानी तकनीक भौगोलिक सीमा निर्धारण है। भौगोलिक स्थिति विषय विशेष के अध्ययन में जहां सुविधा प्रदान करती है वहां जलवायु, धरती, वन, नदियों और संचार एवं आवागमन के साधनों का विषय संबंध भी विस्तृत रूप से जानकारी में सहायक होता है। हिमाचल के लोक संगीत को समझने के लिए प्रदेश की भौगोलिक व प्राकृतिक स्थिति का प्रभाव जानना नितांत आवश्यक है। लोकसंगीत के मुख्यत: तीन प्रमुख अंश हैं - काव्यपक्ष, संगीतपक्ष, नृत्य अथवा अभिनयपक्ष। कथा पक्ष का विचार काव्यपक्ष के अन्तर्गत ही कर लेना चाहिए। इन सभी पक्षों को भौगोलिक स्थिति कैसे प्रभावित करती है, प्रस्तुत लेख में इसी विषय पर विचार करेंगे।

हिमाचल प्रदेश एक पहाड़ी प्रदेश होते हुए भी अपने में कई विविधताएं संजोए हुए है। जहां भिन्न रियासतों ने भिन्न 2 बोलियों के निर्माण में योगदान दिया वहां भौगोलिक स्थिति की इस विषय में सहायता कुछ कम नहीं। विविधताओं के पनपने में भौगोलिक स्थिति की भूमिका प्रमुख है। प्रदेश के अलग अलग भागों के रीति-रिवाज, रहन-सहन, सभ्यता और संस्कृति अलग होते हुए भी तार सप्तक के स्वरों की तरह आपस में जुड़े हुए हैं।। ऐसा भौगोलिक स्थिति के कारण ही है।

हिमाचल एक सुरम्य पहाड़ी प्रदेश है। जहां छोटी छोटी पहाड़ियों से लेकर 25000 फुट तक की समुद्रतल से ऊंचाई वाले सदा बर्फ से ढके पर्वत हैं। हरे भरे वन, वेग पूर्वक छल छल बहती

नदियां किलकिलाती प्रकृति के नर्तन में संगीतमय संगत करती है। प्राकृतिक सौंदर्य जन-जीवन को भी संगीतमय बना देता है संवेदनशील हृदय प्रसन्नता से लोकगीतों द्वारा गुनगुना उठता है। प्रदेश के सभी भाग प्राकृतिक सौंदर्य से सम्पन्न हैं। इस सौंदर्य का बोध उनके लोकगीतों में उद्‌भासित है।

भौगोलिक परिस्थिति के अनुसार हम प्रदेश को तीन मुख्य क्षेत्रों में बांट सकते है। प्रथम तो उच्च-पर्वतीय भाग हैं जिनमें लाहुल-स्पिति, किन्नौर और चम्बा के पांगी-भरमौर क्षेत्र आते हैं। मध्य उंचाई के क्षेत्र में शिमला, सिरमौर का रेणुका व राजगढ क्षेत्र, कुल्लू और चम्बा शामिल हैं। निम्न उंचाई के क्षेत्रों में सोलन, नाहन, बिलासपुर, मंडी, हमीरपुर, ऊना और कांगड़ा के जिले आते हैं। तीनों क्षेत्रों के लोक संगीत का विकास समान होता हुआ भी आपस में कई रंगभेद लिए हुए है और इनके पीछे भौगोलिक स्थिति के कारण भिन्नताएं एक बड़ी सीमा तक उत्तरदायी हैं।

इस क्षेत्र के अन्तर्गत प्राय: सभी इलाके सागरतल से 9000 से 25000 फुट तक ऊंचे है। ये प्रदेश के अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा मैदानों से बहुत दूर और कटे हुए हैं। इनका अधिकांश भाग सर्दियों में प्रदेश के दूसरे भागों से भी कट जाता है। आने जाने के साधन कठिन और कम हैं। गर्मियां में मुख्य स्थानों को बस सेवाएं सरकार ने उपलब्ध कराई हैं। सर्दियों में तो ये भी बंद हो जाती हैं। किन्नौर का कुछ भाग अवश्य खुला रहता है। पांगी, लाहुल और स्पिति पूर्ण रुपेण बंद हो जाते है। कृषि योग्य भूमि कम है वर्षा की अपेक्षा बर्फ अधिक पड़ती है। कहीं तो वर्षा बिल्कुल नहीं होती। अत्यधिक उंचाई वाले क्षेत्रों में वनों का अभाव हैं। इन सभी कारणों से जनसंख्या का घनत्व बहुत कम है। जीवन कठिन होने से सामाजिक प्रथाएं प्रदेश के अन्य भागों से भिन्न हैं। किन्नौर में बहुपति प्रथा का कारण भूमि का बंटवारा रोकना है। लामा व्यवस्था, बच्चों को भिक्षु-भिक्षुणियां बनाना भी एक सीमा तक इसी के कारण है। स्पिति में मातृ-प्रमुख व्यवस्था है। अत्यंत सर्दी होने के कारण काम का समय कम और आराम का समय अधिक है। सामाजिक ढांचा भौगोलिक परिस्थिति के कारण ही है। खेतों में काम करने के अतिरिक्त अन्य कार्य जैसे ऊन कातना, कपड़ा बुनना, पशुओं की देख रेख घर में ही निपटाए जाते हैं। भेड़ बकरियों को दूर चरागाहों पर पुरुष सदस्य ले जाते हैं परन्तु शाम होने से पहले लौट आते हैं। यह व्यवस्था गर्मी की ऋतु में ही रहती है। सर्दियों में तो वे भेड़ बकरियां नीचे के इलाके में ले जाते हैं तथा घर लौटने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। आबादी कम और कृषि योग्य भूमि बिखरी होने के कारण गांव छोटे-छोटे हैं और दूर-दूर। कई बार तो घर भी दूर-दूर होते हैं। बहुधा लोग पूजा स्थल पर ही एकत्रित होते हैं और धार्मिक गतिविधियों के अतिरिक्त मनोरंजन के रूप में नृत्य, लोक-नाट्य और गायन का आयोजन भी वहीं होता है। किवा संस्कारों के समय किए जाने वाले गान व नृत्य अन्य स्थानों पर या घरों में ही आयोजित होते हैं। प्रत्येक परिवार को निर्वाह के लिए निम्नलिखित कार्य करने पड़ते हैं।

(1) खेती करना
(2) खेतों में सिंचाई करना
(3) भेड़ बकरी चराना
(4) सर्दियों में भेड़ बकरी बाहिर ले जाना
(5) ऊन कातना, कपड़ा बुनना

इन व्यवसायों में श्रम तो लगता है पर बहुत समय तक और एक साथ नहीं। भेड़ बकरी चराते समय अक्सर चरवाहा एक स्थान पर बैठ कर या तो गाने लगता है या बांसुरी आदि कोई साज छेड़ देता है। बांसुरी अथवा कराठ स्वर पर्वत से टकरा कर आने वाली गूंज से प्रभावित होते हैं। उस गूंज में मेल बिठाने के लिए स्वर में कंपन और उंचाई आवश्यक तौर पर अधिक रहती है। यह गुण किन्नौर, लाहुल, स्पिति और पांगी के समूहगान में स्पष्ट झलकता है।

भौगोलिक परिस्थिति के कारण खाने पीने की चीजें आसानी से उपलब्ध नहीं हैं। इसी कारण आहार न तो संतुलित और न पौष्टिक है। इस कारण लोग कद के छोटे और कार्य धीरे-2 आराम से करने वाले हैं। यही चीज उनके नृत्य और गायन में भी झलकती है। नृत्य बहुत धीमी लय और गति से आरंभ किया जाता है। लय, गति और ताल में वृद्धि धीरे धीरे बहुत लम्बे समय में की जाती है। थकान व सर्दी से बचने के लिए स्थानीय-पेय शराब का सेवन भी साथ साथ ही चलता है। नृत्य-गायन का प्रभाव पुरानी परिपूर्ण शराब की तरह धीरे-2 मदहोश करने वाला नशा उत्पन्न करता है।

चूंकि दूर से बुलाना भौगोलिक स्थिति के कारण आवश्यक है इसलिए सामान्य जन के स्वर की उंचाई काफी अधिक होती है। यही स्वर की उंचाई उनके गायन की मुख्य विशेषता है। अक्सर गायन में लगता है जैसे कोई दूर से बुला रहा हो।

स्पिति क्षेत्र कटा हुआ और दूर होने के कारण अपने संगीत में ये सब गुण संजोये हुए हैं। किन्नरी संगीत भी कभी बाहर के प्रभाव से अछूता है और दोनों गुणों का अच्छा उदाहरण है। लाहुल में लय और गति, तुलना में अधिक है जोकि स्पष्ट रुप से कुल्लू और कांगड़ा का प्रभाव है। पांगी क्षेत्र का संगीत भौगोलिक सामीप्य के कारण लाहुल से मिलता जुलता है। भरमौर गद्दी प्रदेश है। गद्दी लोग सर्दियों में निचले पहाड़ी और मैदानी क्षेत्रों में चले जाते हैं, अतः उनका संगीत तरह-2 के प्रभाव के कारण दूसरे अधिक उंचाई वाले क्षेत्रों से भिन्न है। तथापि उनके बहुत से गीत धीमी लय ताल वाले हैं। गद्दी गीतों में कांगड़ा और चम्बा के लोकगीतों का प्रभाव देखा जा सकता है। यह प्रभाव काव्य और गायकी दोनों में है।

किन्नौर क्षेत्र के दो मुख्य नृत्य हैं। कायङ और चाश्मिक। दोनों सामूहिक हैं। रात के कायङ में एक गीत प्रायः एक ही बार गाया जाता है और घेरे में आग जली हुई होती है। नगाड़े

वाला आग के पास बैठता है । कायङ की अवधि निश्चित नहीं होती और थोड़ा 2 विश्राम देकर दिन रात नृत्य चलता रहता है। एक गीत लगभग दो घण्टे चलता है और इतना समय नर्तक लगातार नाचते है । इसका मुख्य कारण क्षेत्र की शीत जलवायु और अधिक उंचाई के कारण हवा का कम दबाव व आक्सीजन की कमी से उत्पन्न कार्य को धीरे धीरे सुन्दर ढंग से करने की वृत्ति है । इस वृति से पनपने वाला धीमी लय और गति से प्रारंभ हुआ और धीरे धीरे तेज गति में बढ़ता हुआ मोहक और मादक संगीत कायङ की आत्मा है । कायङ का एक दूसरा रुप वायङ है और इसमें महिलाएं ही नाचती है । इसमें कोई वाद्य नही बजता तथा नृत्य की लय मध्य होती है।

चाश्मिक नृत्य विवाह के मौके पर नाचा जाता है। वाद्यों के साथ चाश्मिक (बाजगी) में केवल पुरुष ही नाचते हैं। कभी कभी एक दो महिलाएं भी शामिल हो जाती हैं । गीत के साथ चाश्मिक, कायङ से थककर बैठे हुए नर्तकों द्वारा नाचा जाता है। एक एक, दो दो, नर्तकों के साथ महिलाएं गीत गाती हैं और नाचती हैं। चाश्मिक नृत्य प्राय: रात को ही नाचा जाता है। रात के समय लोकनृत्य भौगोलिक स्थिति का ही परिणाम है। दिन तो या काम में या रात की थकान मिटाने में निकल जाता है।

वाद्यों पर भौगोलिक स्थिति का प्रभाव भी अत्यंत गहरा है। उच्च स्वर पैदा करने वाले करनाल और रणसिंग विशेष रुप से पहाड़ी क्षेत्रों में ही प्रयोग होते हैं। इसका मूल कारण पुराने समय में और आज भी दूर तक संदेश पंहुचाने में ऐसे वाद्यों की उपयोगिता रही होगी । दुर्गम प्रदेश होने के कारण ये वाद्य अभी तक अपना स्वरुप बनाए हुए हैं। मैदानी तथा निचले पहाड़ी क्षेत्रों में तो पूजागृहों में भी ये वाद्य लुप्त प्राय: हैं । बांसुरी और शहनाई आसानी से बनाए जाने वाले सरल वाद्य हैं । ये भी न्यूनाधिक मूल रुप में अपना आप बनाए हुए है। गज के वाद्यों में केवल एक तारवाद्य 'चिंधि' भी है जो आज भी वायलिन के प्रभाव से अछूता है। 'गोबो' रबाब सा तार-वाद्य है जिसे तारें छेड़कर बजाया जाता है। बाकी ढोल, नगारे, ताशा, झांझ मंजीरा, डफली, इकतारा, चिमटा, बाण (थाली,) घड़ा इत्यादि सरल वाद्य हैं जो प्रदेश की कठिन भौगोलिक परि-स्थितियों के कारण सरल जीवन के परिचायक हैं।

नृत्य की वेशभूषा में भी भौगोलिक परिस्थिति स्पष्टत: झलकती है। किन्नौर, लाहौल स्पिति पांगी, भरमौर क्षेत्रों के लोकनृत्यों में मोटे और भारी हथकरघा ऊनी कपड़े तथा भारी आभूषण रहते हैं। ऊनी पायजामा रहता है। रेशम अथवा सूती कपड़ो का प्रयोग गद्दी लोगों के साफे अथवा कमरबंद तक ही सीमित है।

काव्य पक्ष में गीत प्रायः थोड़ी लम्बाई के छन्दों तक ही होते हैं। उपमाओं के लिए स्थानीय पर्वत, नदी, नाले, वन, ऋतुओं और पौराणिक चरित्रों का सहारा लिया जाता है। कथा पक्ष में स्थानीय दन्त कथाओं, लोक गाथाओं के अतिरिक्त समसामयिक विषयों को अपनाया जाता है। ये सभी भौगोलिक स्थिति के कारण कुछ न कुछ स्वरूप परिवर्तन अवश्य पाते हैं। मूल रूप चाहे व्यक्ति विशेष के कारण बदले, उसके मानसिक धरातल पर भौगोलिक स्थिति का प्रभाव अवश्य होता है।

भौगोलिक परिस्थिति के कारण मनोरंजन के साधनों में कमी है। गांव छोटे होने के कारण कलाकार न तो अपनी कला के प्रदर्शन का अवसर पाता है और न उचित प्रोत्साहन व पारिश्रमिक मनोरंजन के साधनों की कमी के कारण प्रत्येक व्यक्ति स्वयं भाग लेने को उत्सुक रहता है। जन-जातियां होने के कारण एक साथ मिल कर कार्य करने की परम्परा सार्वभौमिक है। उत्सवों और मेलों पर ही लोगों की भीड़ होती है और वहां नृत्य ही सबसे बड़ा आकर्षण होता है। मैदानी मेलों की तरह झूले, सिनमें, सरकस और कुश्तियां आदि न होती हैं और न हो सकती है। समूहगान नृत्य में भाग लेकर सभी आनन्द उठाते हैं। भौगोलिक परिस्थिति ने इस आवश्यकता का गुण बना दिया है।

इस क्षेत्र के अन्तंगत प्रायः सभी इलाके 4000 से 9000 फुट समुद्रतल से ऊंचे हैं। यहां वनों की बहुलता है। वर्षा भी काफी होती है तथा सर्दियों में बर्फ भी पड़ती है। आवागमन के साधन खुले होते हैं और सुगम हैं। यह क्षेत्र बस सेवा द्वारा प्रदेश के दूसरे भागों से भली प्रकार जुड़ा है। जीवनोपयोगी पदार्थों की उपलब्धा आसान और अधिक है। कृषि योग्य भूमि अधिक है। आबादी का घनत्व उपरी क्षेत्रों की अपेक्षा अधिक है। गांव बड़े है और नगरों की संख्या भी काफी है। लोग उच्च क्षेत्रों के लोगों की अपेक्षाऊंचे कद के साथ सेहतमन्द हैं। जीवन मैदानी क्षेत्रों की अपेक्षा कठिन परन्तु उच्च क्षेत्रों के सम्मुख सुगम है। अत्यधिक सर्दी के क्षेत्र कम हैं। उच्च क्षेत्रों में जहां केवल ग्रीष्म और सर्दी ही होती है, यहां ऋतुओं की बांट निश्चित अवधि की है। वर्ष का काफी भाग खेती बाड़ी और पशु पालन में लगता है। कृषि भूमि दो या तीन फसलों वाली है। उद्यान क्षेत्र में फल अलग-अलग समय पकता है और लोगों को काफी काम करना पड़ता है। इस कारण उच्च क्षेत्रों की अपेक्षा यहां खाली समय कम मिलता है। ऋतुओं के कारण त्योहारों, उत्सवों और मेलों की संख्या अधिक होती है। मेलों के अवसर पर भीड़ भी अधिक होती है। आने जाने के साधनों की सुगमता तथा प्रचुरता के कारण लोग अपने-अपने घरों को लौट जाना पसन्द करते हैं। इस कारण पूरी रात नाटी चलाने की प्रथा अपेक्षाकृत बहुत कम है। नगरों में सिनेमा तथा मनोरंजन के अन्य साधनों के कारण सामूहिक नृत्यों के अतिरिक्त व्यक्तिगत गायन की प्रथा भी है। बाहरी प्रभाव के कारण सामूहिक गान में कथा कहानी भी साथ जुड़ गई है। कई बार गीत प्रसिद्ध लोक नायकों पौराणिक चरित्रों और सरकारी अधिकारियों के बारे में भी

होते हैं ऊंचे क्षेत्रों में जहां भारी बर्फ पड़ती है, समय व्यतीत करने के लिए रामायण और महाभारत आदि की कथाएं भी गायी जाती है और बीच-बीच में नृत्य किया जाता है।

ऋतुओं के बारे लिखे गए गीतों में शिमला का चैत्र मास में गाया जाने वाला 'बिची' गीत है। ग्रीष्म ऋतु में वर्षा के लिए प्रार्थना गीत 'साधटू' सिरमौर में गाया जाता है। वर्षा ऋतु से संबंधित चौमासे के गीत भी गाये जाते हैं। चम्बा में गाए जाने वाले मल्हार का संबंध ऋतुओं से है।

सामूहिक नृत्य के रूप में मध्य क्षेत्रों में नाटी का रिवाज बहुत अधिक है। इनमें कुल्लू, शिमला और सिरमौर की नाटियां प्रमुख हैं। तीनों प्रकार की नाटियां आपस में मिलती जुलती हैं परन्तु बोली और स्वर लगाने के ढंग अन्तर होने के कारण अपना अलग-अलग स्वरूप रखती हैं। भौगोलिक स्थिति के कारण वेशभूषा में स्पष्ट मिलता हैं। ऊन के अतिरिक्त रेशमी और सूती कपड़ों का भी प्रयोग किया जाता है। लय, ताल, गति उपरी क्षेत्रों की अपेक्षा तीव्र है। छन्दों की लम्बाई कहीं-कहीं लम्बी है और कहीं-कहीं अतुकान्त तथा मुक्त छन्दों का भी प्रयोग होता है। नाटी तीन लयों में नाची जाती है-विलम्बित, मध्य और द्रुत। कम सर्दी वाले मौसम में नाटी खुले स्थान पर और अत्यन्त शीत ऋतु में घरों के अन्दर नाची जाती है। नृत्य के साथ गाए जाने वाले कथानक को शिमला में अंचली कहा जाता है। अंचली में पहले ब्रह्मखाड़ा और फिर 'भारथ' अथवा 'बार' गाई जाती है। 'अंचली' के आयोजन में कभी-कभी 'स्वांग' लोकनाट्य भी किए जाते हैं। घर के अन्दर नाची गयी नाटी में वेशभूषा का बन्धन नहीं होता। कई बार नाटी सारी रात नाची जाती है परन्तु बहुधा इसका समय सीमित रहता है।

सिरमौर क्षेत्र में 'मुजरा' नाम का नृत्य होता है जिसमें श्रृंगार गीत बड़ी तेज लय और ताल पर गाया जाता है। इस पर बाह्य प्रभाव स्पष्ट है। चम्बा के गद्दियों द्वारा किया जाने वाला 'फुमाल' नृत्य विलम्बित, मध्य और द्रुत तीनों लयों में नाचा जाता है परन्तु पुरुष प्रधान होने के कारण अक्सर लय द्रुत ही रहती है।

नाटियों में अक्सर श्रृंगार गीत ही गाये जाते हैं परन्तु वीर रस और हास्य रस के गीत भी शामिल किए जाते हैं। मस्ती में भर कर एक दो नर्तक अलग खुला नृत्य भी करते हैं। अपेक्षाकृत गर्म जलवायु तथा बाह्य प्रभाव के कारण अंग संचालन में तेजी और कुशलता लय, ताल में भी वृद्धि और गीतों की विषय विविधता इन नाटियों के विशेष गुण हैं। बाह्य प्रभाव को आत्मसात करके पता भी नहीं चलने दिया जाता।

कुल्लू घाटी प्रदेश के अन्य भागों से थोड़ी कटी होने के कारण आज भी अपनी नाटी के लिए प्रसिद्ध है। कुल्लू के लोकगीत, गायक, वहां के पट्टू और घोट्ट वाली कलात्मक बुनाई लेकर नाचने

वालों को संगीतमयी छंदो की गायकी देते हैं। इन गीतों में कुल्लू के प्राकृतिक सौंदर्य ब्यास नदी तथा देवी देवताओं की अपार चर्चा रहती है।

यह क्षेत्र मैदानी इलाकों से लगता है और समुद्रतल से ऊंचाई 1500 से 3000 फुट तक है। आबादी का घनत्व उपरोक्त दोनों क्षेत्रों से अधिक है। कृषि योग्य भूमि भी अधिक है परन्तु प्रति व्यक्ति कृषि योग्य भूमि कम है। बर्फ वाले क्षेत्र बहुत कम है। आवागमन के साधन अधिक और सुगम हैं। तलहट्टी में रहने वाले लोगों से सामाजिक, व्यापारिक और अन्य स्तरों पर संबंधों के कारण बाहरी प्रभाव बहुत अधिक है। इस कारण सामूहिक नृत्यों की अपेक्षा लोक गीतों की बहुतायत है। सामाजिक तथा जाति बंधन उपरी क्षेत्रों की अपेक्षा कड़े होने पर भी उनका पालन सामूहिक कार्यविधि को प्रोत्साहित नहीं करता। लोक नृत्य प्रायः गिद्धा तक ही सीमित है। यह गिद्धा पंजाब के गिद्धा से भिन्न अपने में एक नजाकत लिए हुए है। इसमें अंग संचालन, उठने का ढंग भाव मुद्रा प्रधान हैं और लय तेजी पंजाबी गिद्धा से कहीं कम। पंजाबी उछल कूद तथा जोश एक दमगायब होता है।

चूंकि खेती बाड़ी, व्यापार और अन्य उद्योग धन्धे दूसरे क्षेत्रों से अधिक है, काम का समय अधिक होता है और खाली समय कम। शिक्षा प्रसार अधिक होने के कारण लोग फौज या सरकार अर्ध सरकारी व निजी क्षेत्र में नौकरी पेशा हैं। ये लोग सामूहिक नृत्य में बिल्कुल भाग नहीं लेते और यदि लें भी तो औपचारिकता मात्र निभाते हैं। अधिक काम थका देता है और लोग मनोरंजन के लिए सिनेमा, खेलकूद (कुश्ती, बालीबाल आदि) और नगर भ्रमण का सहारा लेते है। खाली समय महिलाओं को अधिक है और अधिकतर लोकगीत उन्हीं के द्वारा गाए जाते हैं। पुरुष लोकगीत भी प्रायः अकेले ही गाते हैं। साजो का प्रयोग बहुत कम होता है। तबला ढोल व हारमोनियम का प्रयोग होता है। ताल के लिए ताली का प्रयोग बहुत अधिक है। यह समूहगान के प्रति उदासीनता के कारण ही हैं। समूहगान त्योहारों उत्सवों और संस्कारों के समय ही गाए जाते हैं। लोकगीतों में संस्कार अधिक है। 'स्वांग' लोक नाट्य की परम्परा कुछ क्षेत्रों में आज भी बाकी है और शायद कुछ दिन और बनी रहे। रामलीला के आयोजन बहुत स्थानों पर होते हैं और इसका स्वरूप पंजाब तथा हरियाणा जैसा ही है।

लोकगीतों में समसामयिक विषयों और घटनाओं का समावेश तुरन्त कर लिया जाता है। समूहगान का एक अवसर जगराता व कीर्तन है। इसमें नृत्य नहीं होता और अब गीत प्रचलित फिल्मी धुनों के आधार पर बनाए व गाए जाते हैं। इनमें लोक भावना कम और व्यापारिक भावना अधिक रहती है। इन सबके होते हुए भी मंडी, बिलासपुर, सोलन, कांगड़ा और हमीरपुर में लोक गीत आज भी अपना अस्तित्व बनाए हुए हैं। बाह्य प्रभाव को कई बार सीधे अपनाया गया है। गुरखाली गीत और नृत्य धर्मशाला में लोक संगीत का अभिन्न अंग बन गए हैं। सिरमौर के लोकगीत भी गुरखाली लोक संगीत से अछूते नहीं रहे।

उपरोक्त चर्चा से प्रकट है कि हिमाचली लोक संगीत में पहाड़ की बात होगी, पर्वत की गूंज उठेगी 'पत्थरा रे माणु' 'रंड सेउ' 'जादु भात' 'घीऊ खिचड़ी खाएंगे और बीशू, मिजर, लवी, दशहरा, रेणुका में नाचेंगे। जिस धरा पर जन्म हुआ, जिस हवा में सांस ली, जिस देवदार, चीड़ आम के पत्तों की सरसराहट में संगीत को जन्म दिया वहीं के नगारे पर नदी के उद्गम की तरह धीमे ,बचपन की तरह मध्य और यौवन की तरह द्रुत लय में पैर थिरकेंगे। दिन छोटा होने पर रात लम्बी होगी तो गायन और नृत्य की अवधि बढ़ेगी। भले ही भोर हो जाए, पांव थक जाएं, सोना और जागना तो इस पर्वतीय भूखण्ड पर ही है।

7, ओल्ड ब्रोक्हर्स्ट कॉटेज
शिमला-171009

शियाणा ऋषि

● डा० बलदेव ठाकुर

हिमाचल प्रदेश देवताओं की भूमि है। यहां अनेक देवताओं का वास रहा है। इन्हें यह देवत्व स्वत: प्राप्त नहीं हुआ है। प्रत्येक ने अनेक परोपकारी कार्य किए हैं तभी वे देवता बने। प्रत्येक देवता चैत्र बैशाख में विशेष उत्सव के अवसर पर अपनी गाथा सुनाता है जिसे भारथा कहते हैं। ये भारथाएं ऐतिहासिक और सामाजिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। इनमें ऐतिहासिक और पौराणिक तत्व ढूंढने योग्य है। यहां एक देवता की मूल गाथा प्रस्तुत की जा रही है। यह ठीक उसी प्रकार है जिस प्रकार देवता का गूर तब सुनाता है जब देवता की आस्था उसमें प्रवेश करती है। इसमें किसी तरह का सुधार नहीं किया गया है।

—लेखक

हिमालय की गगनचुम्बी बर्फीली पहाड़ियों के बीच झील मानसरोवर के किनारे वासुदेव ऋषि के चार बेटे रहते थे। थे वे शृंगाऋषि, शियाना ऋषि, मान ऋषि और ध्यान ऋषि। काफी समय से वहां जप-तप करने के पश्चात् जब उन्हें सब कुछ हासिल हो गया, तो वे वहां से अपनी-अपनी शक्ति, ज्ञान, बांटने भिन्न-भिन्न दिशा में निकल पड़े। शृंगाऋषि और शियाना ऋषि दोनों लाहौल पहुंचे। परन्तु वहां अपने लिए ठीक जगह न पा सकने के कारण वे दोनों कुल्लू की तरफ आ गए। वे हामटा-मलाना होते हुए बुंगा-बड़ोगी (सैंज वादी में) पहुंचे। जब इस जगह भी उन्हें अच्छा न लगा तो चलते-चलते वे सकीरण-कंडा पहुंचे। वहां पहुंचकर शृंगा ऋषि ने अपने भाई शियाना से कहा, "देखो, हम घूमते फिरते यहां पहुंच गए हैं। मेरे अनुसार हमारे लिए यही जगह अच्छी रहेगी। यहीं पर हम अपनी व ज्ञान-शक्ति का प्रचार करेंगे। बैठा-राज आपका होगा और चलताराज मेरा रहा।" शृंगा के कहने का मतलब था कि इलाके के अन्दर और दर्शनाभिलाषी लोगों के दु:खों पर शियाना ख्याल करेगा और निपटारे वे स्वयं किया करेगा। पर शियाना को इस प्रकार का बंटवारा अच्छा नहीं लगा। शृंगा को वहीं छोड़ शियाना अकेला आगे चल पड़ा। आज भी सकीरण-कंडा

में और चोटी से नीचे बागी गांव में श्रृंगा ऋषि को एक देवते के रूप में पूजा जाता है और वहां बागी गांव में उसका बड़ा सुंदर मंदिर है।

चलते-फिरते शियाना घुमेनी पहुँचा। इस वादी में शरची-बांदल में उसकी मुलाकात गाडा-दुर्गा से हुई। उन दिनों इस देवी का इलाके में अच्छा बोल-बाला था। एक दिन गाडा दुर्गा ने भी शियाना को श्रृंगा ऋषि की तरह सलाह दी जिसमें की शियाना को बैठा राज देकर गाडा दुर्गा चलता राज संभालना चाहती थी। परन्तु शियाना सोच में डूब गया कि सभी मेरे साथ इस प्रकार का बंटवारा क्यों चाहते हैं। उसने दिल में सोचा कि मैं किसी भी इलाके में बसूं पर मैं अकेला ही उस जगह का राज संभालूं। इसलिए एक बार फिर से शरची बांदल छोड़ कर वह आगे निकल पड़ा।

बठाहड़, घलेहड़ होते हुए वह पजाहा जोत की तरफ चल पड़ा। उन दिनों ठारला और सगोफा (निरमंड क्षेत्र की चायल पंचायत के दो प्रसिद्ध गांव) गांव के कुछ लोग इन्नर-सिराज से होते हुए नमक ला रहे थे। इन्हें 'ठारलू-सफालू' नाम से पुकारा जाता था। पजाहा जोत पर पहुंचते-पहुंचते इन लोगों का खाने पीने की सारी सामग्री समाप्त हो गयी। सब बड़े परेशान हो गए। गांव पहुंचने में अभी तीन-चार दिन और लगने थे। जब शियाना उधर से गुजर रहा था तो सब लोगों को परेशानी में देख उसने उनसे इस परेशानी का कारण पूछा। उन्होंने अपनी सारी व्यथा सुनाई तो शियाना ने उन लोगों को अपना आटे का खलटा (बकरे की खाल का बना बड़ा थैला) उलटा करके झाड़ने को कहा। ऐसा करने पर खलटे से कुछ आटा नीचे गिरा। ऋषि ने अपनी शक्ति से उस आटे से रोटियां बनाईं। सब लोगों के भर-पेट खाना खाने के बावजूद रोटियां बच गईं। तब ठारलू-सफालुओं ने सोचा कि जरूर इस ऋषि में कोई देव शक्ति है। उन्होंने उससे अपने साथ चलने का आग्रह किया।

सरा-धार के पास से ठारलू और सफालुओं का रास्ता अलग हो जाता था। शियाना वहां से ठारलुओं के साथ हो लिया और ठारला पहुँचा। ठारला में उसने मोती नाम के एक आदमी से जगह ली। यह जगह अभी भी इसकी सौह (देव स्थान) के रूप में है। परन्तु वहां भी जब उसे मन की शांति प्राप्त न हुई तो एक रात वहां से वह भाग गया।

ठारला से ऊपर की पहाड़ी पर बराम-गढ़ जगह है। वहां पर बीचों बीच जो ऊंची पहाड़ी है उसके ठीक मध्य में एक कुआं है। इस कुंए में आज भी उतना ही पानी है जितना कि कई समय से वहां था। कहा जाता है कि मुसलाधार से मुसलाधार बर्षा में और जबरदस्त सूखे में भी इसके अन्दर पानी न तो बढ़ता है और न कभी सूखता है। उन दिनों इलाके का देवता 'पडीर' वहां रहा करता था। जब शियाना को पडीर मिला तो दोनों में दोस्ती हो गई। पर शियाना के दिल में अभी यही निश्चय था कि वह किसी के साथ सांझा राज नहीं करेगा। एक दिन शियाना ऋषि पडीर से बोला, "मैं तो चावल खा-खा कर थक चुका था, इसीलिए अपना देश छोड़ अब भटक रहा हूं।"

पडीर : यार ! तू किस देश से आया है। मैं तो यहां पर काठू-टाक खा कर तंग आ गया हूँ।

शियाना : मैं बड़ोगी (बठाहड़ घाटी में) का रहने वाला हूं वहां तो चावल ही चावल उगता है।

पडीर : क्यों न मैं तेरे देश चला जाऊं।

शियाना : ठीक है यार ! मैं तो काठू-टाक खाना बड़ा पसन्द करता हूं। मैं यहीं रह लेता हूं।

इस प्रकार शियाना ने पडीर को ठग कर बड़ोगी भेज दिया। असल में बड़ोगी भी इस इलाके की तरह ही खराब इलाका था और वहां भी काठू-टाक ही उगता था। पर जब तक पडीर बड़ोगी पहुंचा और वहां की असलियत जान कर वापिस आया, तब-तक शियाना इस इलाके में अपनी हद बना बैठा था। अब पडीर देवता बड़ोगी में ही बस गया। आजकल सराहन और बड़ोगी के लोग अपने दोनों देवता सराहनी देवता और पडीर देवता को एक-दूसरे का माहिड़ (धर्म-भाई) मानते हैं और हर साल दोनों गांवों में आपसी 'हारगी' चलती है। हारगी का अर्थ है कि दो रिश्तेदार किसी खास साजे-खुशी के त्योहार पर एक-दूसरे के घर पकवान इत्यादि ले जाते हैं।

इस दौरान जब शियाना ने ठग कर पडीर को बड़ोगी भेजा था, शियाना पडीर के उस इलाके में घूमने लगा। सराहन गांव के ऊपर एक आदमी भेड़-बकरियों के लिए पत्तियां काट रहा था। जब वह पत्तियां काट कर पेड़ से नीचे उतरा तो उसने देखा कि पत्तियों के अठासठ बंडल बंधे पड़े थे ये बंडल अपने-आप बंध गये थे। वह आदमी बड़ा हैरान हुआ। पर उसका तो आधा काम अपने आप ही हो गया था। खुशी में उसने जल्दी जल्दी वे बंडल अपने रूशले (एक प्रकार का डंडा जिसके सहारे पर घास इत्यादि आसानी से बोझ बना कर लाया और ले जाया जा सकता है) पर लगाने शुरू किये। जैसे-जैसे वह बंडल रूशले पर चढ़ाता तो जगह बचती रही। करते करते अठासठ के अठासठ बंडल का केवल एक ही बोझा बन गया। उस आदमी ने फटा-फट बोझ उठाया, जो कि उसे हलका भी लग रहा था, और घर की ओर भागा। परन्तु गांव के पिछे देऊ बाढ़ा जगह पर यका-यक बोझ भारी हो गया और रस्सी टूट गई और सब बंडल खुल कर पत्तियां बिखर गईं।

यह सब कुछ शियाना की शक्ति का खेल था। जो कि वह उस इलाके के लोगों को बताना चाहता था। परन्तु देऊ बाढ़ा के पास पहुंचते ही उसे लगा कि आस पास ही कोई और शक्ति है जो कि उसे अपना राज शुरु करने नहीं देगी। इसलिए देऊ बाढे से शियाना वापिस जंगल की ओर भागा। विशलेऊ पास से दक्षिण में झुकरी जंगल में जलाड़ी ओडा टीले पर से उसकी नजर सराहन गांव के पीछे मैदान पर पड़ी। इस मैदान को लोग "बाग" कहते हैं। उस मैदान के पूर्व में एक छोटा सा मकान था जिसमें कि "डराई नाग" का बसेरा था इस नाग के पास एक सोने की थाली और

चांदी का गिलास था और इन दोनों वस्तुओं को साथ ले कर यह नाग मैदान के पश्चिमी हिस्से में "सर-सेट" तालाब के किनारे जप किया करता था। इसी नाग की इस शक्ति की वजह से शियाना ऋषि देऊ बांढे से वापिस भागा था।

जलाढी ओढा से ऋषि ने बर्छा (गुर्ज) मारा जिससे कि डराई नाग की सोने की थाली टूट गई गुस्से में लाल-पीला नाग जप छोड़ कर उठ खड़ा हुआ और बर्छा फिर घुमाया। यह बर्छा शियाना की गाल पर लगा। सराहनी देवता के रथ पर लगे देवते के मोहरे (मूर्ति) को ध्यान से देखा जाए तो उसके एक तरफ के गाल पर अभी भी इस का निशान है तब ऋषि ने भी अपनी शक्ति प्रकट की काफी देर युद्ध के बाद जब नाग के बस की बात नहीं रही तो उसने रीछ का रुप धारण किया और अपना मकान तोड़ डाला और सराहन घाटी से नीचे को दौड़ पड़ा। शियाना ऋषि ने उसका पीछा किया और डांगरी जात (अरसू के पास से कुर्पन नदी के दांए तट पर स्थित एक जगह) के पास पत्थर पर उस नाग पर बर्छे का वार किया। आज भी उस पत्थर पर बर्छे की मार से दरार और निशान है। कहा जाता है कि यहीं तक उसने अपने राज की सीमा को निर्धारित किया।

परन्तु इससे पहले कि वह वापिस सराहन आता, शियाना अपने आस पास की जगह को देखने की इच्छा से निरमंड पहुँचा। वहां के लोगों ने उससे पहले उन्नीस देवताओं को परशु राम के मंदिर में कैद कर रखा था। शियाना को भी उन्होंने पकड़ा। कैद करने के लिए उन्होंने शर्त रखी हुई थी। इनके पास 18 मन भारी तांबे का एक पतीला था। जिसे कि सात धौंकनी (लुहारों के पास हवा देने के लिए एक विशेष प्रकार का चमड़े का बेग) द्वारा आग फूंक-२ कर गर्म किया जाता था। शर्त के अनुसार यदि कैदी इस गर्म पतीले को उठा ले तो उसे रिहा कर दिया जाता था नहीं तो सदा के लिए कैदी बन जाता था।

शियाना ने एक गवाले का रूप धारण किया। उसके कान में कुंडल था, हाथ में रस्सी-रुशल और पीठ पर खलीपड़ु (चमड़े) का पीठू। इस रूप में उसने वह गर्म-भारी पतीला पीठ में उठाया और निरमंड के अढ़ाई चक्कर लगाए और वापिस सराहन की तरफ चल पड़ा। 'चला-कौट' नाम की जगह पहुंच कर उसने पतीले को फेंक दिया। वहां से सात हाथ नीचे तक उस पतीले की गर्मी से जमीन तक जल गई। यह निशान इस जगह अभी भी है। अभी भी हर वर्ष 19 बैशाख को सराहनी देवता वहां जाता है।

वहां से वापिस आ कर शियाना सराहन के मैदान 'बागा' पहुँचा। उस समय वहां पर कुछ गवाले बच्चे डंगर चरा रहे थे। ऋषि को वहां देखकर उन्होंने उस पर गोबर मारना शुरु कर दिया काफी देर सहन करने के बाद शियाना ने बच्चों को जवाब में गोबर मारा। यह गोबर पत्थर बन कर बच्चों को लगने लगा। बच्चों का शरीर खून से लथ-पथ हो गया और सब घर की ओर भागे। सबने अपने घर आकर ऋषि के बारे में बताया। गांव के सब बुजुर्ग लोग इकट्ठा होकर गांव के मुख्य पंडित-हरनर के पास गए। उस पंडित ने जब ऋषि को देखा तो वह सबकुछ समझ गया।

उसने गांव वालों को बताया कि एक देवता इस ऋषि के रूप में हमारे गांव आया है। इसी ने यहां से ढराई नाग को भगाया है और उस दिन पत्तियों के बडल भी इसी की देव शक्ति से बंधे थे। तब सब गांव वालों ने मिलकर शियाना को अपना देवता माना और अपने गांव में बसाया।

शियाना के अंतर्ध्यान होने के पश्चात् गांव वालों ने उसके लिए एक मन्दिर बनवाया और उस देवता-रूपी ऋषि की मूर्ति (मोहरा) बनाने का काम एक लुहार को सौंपा। जब लुहार से यह मूर्ति अपने घर पटेहड़ में न बनी तो उसने गांव के नजदीक एक शांत डुआर-'ढाक डुआर' में बैठकर इसे बनाने की कोशिश की। परन्तु वहां पर भी मूर्ति पूरी न हो सकी। जैसे ही मूर्ति में थोड़ी सी गल्ती हो जाए तो वह सारी की सारी टूट जाती थी। उसके बाद उस लुहार ने यह मूर्ति क्रमशः शेता-डुआर, पढेंडा-डुआर, बजडाल और बागा डुआर में बनाने की कोशिश की परन्तु सब जगह वह इस काम असफल रहा। अन्त में सातवीं जगह 'बंगली डुआर' में बैठकर कड़ी मेहनत के बाद वह लुहार उस मोहरे को ऋषी की हू-बहू शक्ल के अनुसार बना सका। इस मोहरे के बनते ही लुहार अन्धा हो गया। असल में मूर्ति बहुत सुन्दर बनी थी। देवता चाहता था कि इतनी ही सुन्दर कोई और मूर्ति कहीं और न बन जाए। इसीलिए वह मूर्तिकार लुहार अन्धा हो गया।

मोहरे के पूरे होने पर उसे सज-धज कर गांव में लाया गया। मोहरे को देवते के रथ पर सजाया गया और मन्दिर में रख दिया गया। पूरे इलाके में देवते का बोलबाला हो गया। दूर-दूर से लोग सराहनी देवता के दर्शन को आने लगे। गांव के नजदीक ठलाड़ी में उन्हीं दिनों एक 'मलेच्छ' परिवार एक खास प्रकार के वन-मानुष का परिवार था। आज तक इस परिवार के लोग गांव में दंगा-फसाद करके गांव वालों को डराया-धमकाया करते थे। जैसे-जैसे सराहनी देवता पर लोगों की आस्था बढ़ती गई वैसे-वैसे लोगों ने इस मलेच्छ परिवार की बात सुनना बन्द कर दिया। 'मुख्या-मलेच्छ' को इस बात का बड़ा गुस्सा आया। एक दिन उसने 'झीटो खेच' में मेले का आयोजन किया आज भी एक और दो वैसाख को सराहन का प्रमुख मेला इसी जगह पर मनाया जाता है। उस मेले में उसने सराहनी देवते के रथ को भी बुलाया। शाम को मेले की समाप्ति के दौरान अपना कई दिनों का गुस्सा उसने देवते के रथ पर निकाला। उसने रथ को उल्टा करके झीटो-खेच के नीचे फेंक दिया। गांव वालों को भी उसने खूब तंग किया। भोजगी (पुजारी) बेचारा इतना डरता था कि उसने पूजा करने के लिए देवते के रथ को सीधा किया और पूजा समाप्त होने पर 'मलेच्छ' के डर के मारे रथ को दोबारा उल्टा करके रख दिया। बेचारा क्यों न करता वह ऐसा। क्योंकि उसकी लड़की मलेच्छ परिवार में जबरन ब्याही गई थी।

अन्त में देवते का बल उस भोजगी लड़की को गया जो कि मलेच्छ परिवार में ब्याही गई थी। उसके जरिये देवता ने सारे मलेच्छ परिवार को जहर से भरी रोटियां खिला दी। एक-एक करके सारा मलेच्छ परिवार तबाह हो गया। केवल वह लड़की बच गयी। उस समय वह गर्भवती थी।

मलेच्छ परिवार समाप्त होने के बाद वह अपने मायके भोजनी परिवार में आ गई। यहां आ कर उसने एक बच्चे को जन्म दिया, और उस लड़के का खानदान आजतक सराहन गांव में बस रहा है। इस खानदान को ढलाड़ू महाते' नाम से पुकारा जाता है। इस खानदान के सदस्य आज भी सराहनी देवते के कार-करनी मे हर समय मुख्य अतिथि होते हैं और उस दौरान उन्हें सदा देवता और पुजारी के सामने बिठाया जाता है। इन ढलाड़ू-महातों को कभी भी गल्ती से देवता और गूर के पीछे नही बैठाया जाता क्योंकि इन्हें उस मलेच्छ परिवार से बने हुए सदस्यों के रूप में माना जाता है। इसलिए इनसे सदा धोखेबाजी का डर रहता है। साथ ही, क्योंकि सराहनी देवता ने उस लड़की के जरीये पूरे मलेच्छ परिवार को खत्म किया था इसलिए उस लड़की के इस 'ढलाड़ू-महते' खानदान को हर समय मुख्य स्थान दिया जाता है।

सिविल डिस्पेंसरी,
अरसु, जिला कुल्लू,
बरास्ता रामपुर बुशहर

बुशहर व बुशहरी

● शरमा नन्द श्रवण

आज से सिर्फ चालीस वर्ष पूर्व शायद कोई सोच भी नहीं सकता था कि इतनी बड़ी रियासत बुशहर का नाम सिर्फ रामपुर के साथ जुड़ कर इतना सिमित हो जायेगा कि रामपुर बुशहर से ही जाना जाये।

यह तो दूर की ही समझ हो सकती है परन्तु निकटस्थ जानकार तो विश्वास नहीं करेगा कि बुशहर हिमाचल प्रदेश जिला शिमला के एक ग्राम रामपुर के साथ जुड़ा हुआ आधा नाम है। युगों से चलता आया बुशहर सदियां बीत जाने पर ही क्यों चालीस वर्ष के भीतर इतना सीमित हुआ, इस के चन्द विशेष कारण हैं जिस में प्रमुख स्वतंत्रता के साथ लोकतंत्र की बहाली तथा राजा बुशहर का योगदान एवं लोक प्रियता, जिसका लेख में तो प्रमाण मिलेगा ही परन्तु प्रमाणित तथ्य आज स्व. श्री महाराजा पद्म सिंह के सुपुत्र श्री वीरभद्र सिंह हैं जो हिमाचल के मुख्य मन्त्री हैं।

अतः यह मानना होगा कि जहां बुशहर सीमित हुआ वहां बुशहरी विकसित हुआ। जिस से हिमाचल की प्रभु सत्ता ही नहीं मिली अपितु भारत भर में सिर ऊंचा हुआ। यह बुशहरी का ही नहीं समूचे हिमाचल का गौरव है।

बुशहर महाभारत काल से पूर्व भी था और पश्चात् भी तथा आज भी है। बुशहर ग्राम नहीं क्षेत्र है जो एक राजाओं की रियासत रही। यहां के राजा को राजा बुशहर ही कहलाया गया, वे चाहे राजा बली तथा बली पुत्र बाणासुर या महाराजा राम सिंह तथा उन के प्रपौत्र पद्म सिंह राजा बुशहर कहलाए। सब विष-हर के उपासक हुए, व शैव कहलाए। विष+हर से ही बुशहर नाम पड़ा।

महाभारत काल तक इस क्षेत्र के शासक दानव रहे तथा इस के पश्चात् श्री कृष्ण द्वारा जब बाणासुर पराजित हुए तब मानव शासक आए।

राजा बुशहर की वंशावली के बारे (2-3) दो तीन मत हैं। कुछ लोग 52 पीढ़ियां बताते हैं तथा

कुछ उस से भी कम। एक प्रमाण के आधार पर (120) एक सौ बीस जो लगभग समय कालानुसार भी उचित पाया गया। यह राजा चन्द्र वंशी कहलाए जाते हैं।

रियासत बुशहर हिमालय के किन्नर कैलाश जो नौ कैलाशों में एक है, के प्रांगण में शतद्रू (सतलुज) नदी के साथ-2 स्थित है। क्षेत्र नदी के इधर -उधर भी कुछ फैला हुआ है। परन्तु इस के महलात कामरू से रामपुर तक कई स्थान पर बने हैं जो नदी के किनारे अथवा ऊंचे-शैल पत्थर पर बने हैं। सब किला नुमा है इस के साथ कुछ वजीरों के भी मकान हैं जो इसी शकल में हैं जैसे पुवारी, पुवंनी तथा कुहल आदि।

प्राचीन बुशहर राज्य के विस्तार तथा विकास के आधार पर इतनी लम्बी युग पीढ़ी में अधिकांश महाराजा राम सिंह तथा पद्म सिंह का नाम चर्चित है। इन के कला कलापों में भी भिन्नता है। जहां महाराजा पद्म सिंह ने आधुनिक कलाओं से सुसज्जित मन्दिर व महलात बनाए वहां राम सिंह ने किला नुमा महलात तथा प्राचीन शिल्पी मन्दिर बनाए। इस की प्रमाण परत आज भी रामपुर में ही पलटी जा सकती है। जहां दोनों राजाओं ने दो सदियों के अन्तराल में अलग-अलग दो महल बनाए जो पुराना महल तथा नया महल कहलाए जाते हैं। पुराना महल किला नुमा है जो सतलुज नदी के साथ लगते एक बहुत बड़े शैल पर स्थित है तथा दूसरी ओर नया महल जो समतल बने स्थान पर आधुनिक तकनीक तथा चित्र चित्रण से सुसज्जित सुन्दर तथा विस्तृत है जैसे कचहरी, बैठक, सिंहासन गोदाम आवास प्रवास एवं खुला सहन तथा उस के मध्य भाग में बना पानी का फुवारा आदि।

राजा बुशहर के महलात जहां तहां कई स्थानों पर बने हुए हैं। परन्तु राज तिलक (गद्दी) कामरू में ही होता था। कामरू जिला किन्नौर के मध्य भाग सांगला वैली में स्थित है जहां एक मन्दिर बहुत ऊंचा ग्राम के मध्य में है। एक दो राजाओं को छोड़ अन्य सभी का राज्याभिषेक यहीं हुआ।

रियासत बुशहर जहां प्राचीनतम् रियासत में एक थी वहां पड़ोसी राजाओं का हस्तक्षेप तथा राजनीतिक उतार चढ़ाव भी होते रहे। इस राज्य का क्षेत्र पहले सीमित था परन्तु महाराजा राम सिंह ने इसे काफी हद तक फैलाया। छोटी-2 जागीरों के साथ कुछ इलाका स्पीति के राजा का भी हथ्या लिया तथा कुछ क्षेत्र इन्हें गढ़वाल राज्य से भी प्राप्त हुआ जो रोहड़ू तथा उस के आस पास का क्षेत्र है।

कामरू (सांगला वैली) के बिल्कुल सामने नदी के उस पार भावा वैली (भावा नगर) जो स्पीति राज्य के साथ रहा तथा वैली से पीछे 10 मील की दूरी पर वलघर स्थान तक बुशहर में मिलाया।

आज भावा नगर की महानता प्रोजैक्ट के निर्माणाधीन देश भर में प्रख्यात हुई परन्तु इस के पीछे के निर्जन स्थान बलधर की भी विशेष महत्ता है जिस का उल्लेख करना आवश्यक है।

बलधर एक बहुत बड़ा समतल स्पाट चौगान है। यहां कोई आबादी नहीं। बहुत ऊंचाई पर मीलों लम्बा चौड़ा मैदान है यह भावा ग्राम से भी 10 मील की दूरी पर पीछे की ओर है। गर्मी में यहां कई स्थानों से चरवाहे भेड़ बकरियां ला कर चराते हैं। यहां की घास इन पशुओं के स्वास्थ्य के लिये लाभ कारी है। इस के साथ यह चौगान हिमाचल के तीन सीमांत जिलों का केन्द्र बिन्दु भी है। कुल्लू, लाहुल स्पीति तथा किन्नौर। यहां से कुल्लू के मणीकरण वैली तथा सैंज वैली में पैदल चल कर एक ही दिन में पहुंचा जाता है, दूसरे नुकर से स्पीति के ग्राम काजा में भी पहुंच जाते है। किन्नौर बुशहर के साथ तो यह स्थान है ही। यह है बलधर जिसे सरकार यदि चाहे तो इस प्राकृतिक सौंदर्य पूर्ण स्थान को टूरिज़म के अधीन लाकर लाभ कारी बना सकते हैं। अब हमें इस में न पड़ कर वापिस अपने विषय पर लौटना है।

आइये अब हम आप को एक ऐसे स्थान पर ले चलें जो 8/9 हजार फुट की ऊंचाई पर स्थित है। रियासत बुशहर का महत्व पूर्ण स्थान रहा चूंकि अब इस स्थान को बुशहर का नहीं जिला कुल्लू का माना जाता है यह है राम गढ़।

रामगढ़ पर महाराजा राम सिंह द्वारा निर्मित एक किला था जिस के खंडहर आज भी वहां पाए जाते हैं। इस के साथ में एक छोटा सा मन्दिर है जो नातली नाग का मन्दिर कहलाया जाता है। यह स्थान राम पुर ग्राम, जिसे राम सिंह ने ही बसाया, दरया पार सीधा ऊंचाई में नजर आता है।

इस स्थान की ऊंचाई इस प्रकार है कि चारों ओर से बुशहर के महाराजा रामसिंह काल के पूर्ण राज्य का निरीक्षण कर सकते हैं। जो इस प्रकार है :—

पूर्व की ओर दृष्टि डालें तो लाडसा, डनसा 12/20 तथा 18/20 अठारह बीस का इलाका जिसके शिखर पर शिराई कोटी का मन्दिर तथा काशा पाठ की चोटी जिसके नीचे कुहल, देऊठ एवं तकलेच वैली पूरी नजर आती है। यहां के लोग आज भी खुद को बसारे (बुशहरी,) आंकने का गौरव मानते हैं माने भी क्यों नहीं, यह लोग तब से अब तक बुसहरी रहे और हैं भी। इसी क्षेत्र से ही रियासत बुशहर के वजीर यानी सलाहकार रहे जिन्हें दरबारी भी कह सकते हैं,

कोठी, कंटी, कोट, चायल, रामगढ़ जलोड़ी के कुछ ग्राम पश्चिम की ओर हैं।

कंटी में साहू साहूकार का प्रभुत्व था। इन्होंने महाराजा राम सिंह से मित्रता कर ली थी जो महाराजा पद्म सिंह तक रही जिन की वंशावली सारिणी इस प्रकार की है।

1. माधु शाह - जो राजा राम सिंह के मित्र रहे।
2. चैत्र शाह
3. योहण शाह
4. गोकल शाह
5. रामानन्द शाह

रामानन्द के तीन पुत्र हैं जो आज तीन भिन्न स्थानों में रहते हैं। इन में गोकल शाह तथा रामानन्द शाह महत्व पूर्ण हैं जो महाराजा पद्म सिंह के दौरा पर साथ हुआ करते थे जैसे कहावत है।

जैसी पद्म सिंह की डोड़ो तैसी रामा नन्दे घोड़ी

जिधर पद्म सिंह की डोड़ी (सुखपाल) जाता है उधर रामा नन्द की घोड़ी भी चलती थी।

किन्नर कैलाश के दामन में बहती सतलुज नदी जो उत्तर से चल कर दक्षिण को बहती है और इसी प्रकार आज भारतीय तिब्बत बार्डर मार्ग दक्षिण से उत्तर की ओर को बढ़ता चला जा रहा है। दोनों ओर की आबादी अनेक गांव छोटे-छोटे नाले और छोटे टीले से ले कर विशाल काय पर्वत शृंखलाएं जो भारत के अडिग प्रहरी प्रकृति मां ने स्थापित किये हैं। यह सब (शिव) विष-हर तथा सती सुपुत्री प्रजापती की अखंड तपस्या हेतु बुशहर घाटी (राज्य) का सृजन हुआ लगता है।

वैसे कई ग्रामों में अनेक मेले मनाए जाते हैं परन्तु राम पुर बुशहर में मेला लवी भारत भर में एक ही मनाया जाता है। यह मेला तिब्बत नरेश तथा राजा बुशहर के आपसी सहयोग एवं व्यापारिक सन्धि का परिचारक रहा -

तिब्बत से मिलने वाली ऊन, गुदमें, गलीचे, ऊनी कालीन आदि का व्यापार होता रहा जो अब काफी कम हो गया है। इसी प्रकार से यहां मेला लवी में अनेक प्रकार का लाखों करोड़ों का व्यापार होता है। सरकार की ओर से भी इस समय पर अनेक प्रकार की प्रदर्शनियां आयोजित की जाती हैं। यथा कृषि, बागवानी, सांस्कृतिक, पशुपालन आदि।

निरमण्ड
जिला कुल्लू
(हि० प्र०)

संस्कृतानुभागः

tharahkardu.in

"काव्य - प्रयोजनम्"

●उर्मिल गौतम शास्त्री

संस्कृत साहित्ये इयमुक्ति प्रसिद्धा अस्ति यत् "प्रयोजनमनुदिश्य न मन्दोऽपि प्रवर्तते" अर्थात् मन्दमति अपि प्रयोजनं बिना किमपि कार्यं न करोति । मन्दानाम् सम्बन्धे अस्ति इयं तर्हि का कथा अन्येषाम् । लोकवत् काव्य क्षेत्रेऽपि प्रयोजनाय एव कवि: यतते । संस्कृत काव्य शास्त्र अनेके आचार्याः व्यासभरतभामह-दण्डी वामन आनन्दवर्धन-बाणभट्ट-राजशेखर-कुन्तक-मम्मट-रुद्रट-विश्वनाथ जगन्नाथादय: स्व-स्वमतानुसारं काव्य-प्रयोजनं कृतवन्त: । काव्यशास्त्रे एवं काव्य प्रकाशे अधोलिखितानि काव्य प्रयोजनानि प्रदर्शितानि सन्ति । प्रयोजन-सम्बन्धे आचार्य मम्मट एवं प्रतिपादयति-

काव्यं यशसेऽर्थं कृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये ।
सद्य : पर निवृतये कान्ता सम्मिततयोपदेश युजे ।।

अर्थात काव्यस्य निम्नोक्तानि प्रयोजनानि सन्ति यथा :—

१ यशस: प्राप्ति:-काव्य रचनया कवि यश: प्राप्नोति । यश: द्विविध: भवति । स्वकीय परकीयश्च । सुकाव्यस्य निर्माणेन कवि: स्वजीवने यशस्वी भूत्वा प्रसिद्धि प्राप्नोति । यथा संस्कृतस्य कालिदास भारवि बाण-श्रीहर्षादय: कवय इदानीं इहलोके न सन्ति, परन्तु स्वकाव्यस्यानुसारेण ते इदानीमपि मृत्वाऽपि अमरत्वं भजन्ते । अधुनाऽपि तेषां यशोपताका, कीर्ति कौमुदी यत्र तत्र विद्वद् गोष्ठिषु अभीयते । कवि अन्यस्य जीवन साहित्यं लिखित्वा तस्य कीर्तिज्योत्स्नां विस्तारयति । बाणभट्ट: निज आश्रयदाता हर्षस्य यशस्य गायनं कृत्वा तमपि जगति अमरतामयच्छत् । उक्तं च

महीपते: सन्ति न यस्य पार्श्वे कवीश्वरास्तस्य कुतो यशांसि ।
भूपा कियन्तो न बभूवुरुर्व्यां नामपि जानाति न कोऽपि तेषाम् ।।

आङ्ग्लविद्वान् मिल्टनः (Milton) अपि यशःप्राप्तिं मानवस्यान्तिमदशायामकामना स्वीकृतवान्।

२ अर्थस्य प्राप्ति :- काव्यनिर्माणेन कविः धनम् लभतेस्म इदमस्ति इतिहासप्रसिद्धम्। अनेके कवयः राज्याश्रयेषु धनप्राप्ति कुर्वन्तिस्म। नृपाणामार्थिक सहाय्येनैव कवयः स्वकीयां काव्य प्रतिभां प्रदर्शितवन्तः। इदमस्ति प्रसिद्धं यत् धावकादयः कवयः हर्षात् नाटक निर्माणस्य प्रचुरं धनं लभन्ते स्म। इदानीमपि वयं पश्यामः यत् साधु काव्यस्य निर्माणेन कवयः लेखकश्च धनप्राप्तिं कृतवन्तः कुर्वन्ति च। श्रेष्ठ काव्यस्य समाजे प्रचार प्रसारो भवति तेन श्रेष्ठ ग्रन्थानां आधिक्येन प्रकाशनं भवति। इत्थं ग्रन्थ प्रचारेण कविः धनप्राप्तिं करोति।

३ व्यवहारस्य ज्ञानम् :- साधुकाव्य रचनया पठन् पाठनेन च मानवः व्यवहारस्य ज्ञाता भवति। केन सह कथमाचरणीयम् इति ज्ञानमपि काव्य द्वारा एव भवति। रामादिवत् आचरणीयम् न तु रावणादिवत्। कुत्र प्रवृत्ति कुत्रच निवृत्ति? इत्यमपि काव्यस्य मार्गेणैव ज्ञायते। पञ्चतन्त्र हितोपदेशादयः कथा साहित्य अस्य एवं व्यवहारज्ञानस्य पूरकः अस्ति।

४ अमङ्गलस्य विनाशः- काव्य द्वारा मानवस्य अमङ्गलस्य विनाश भवति। ईश्वरस्य आराधनया उपासनया च मानवः अकल्याणात् मुक्तोभवति। इयं प्रसिद्धमस्ति यत् सूर्यस्य आराधनया अमरूकवेः कुष्ठरोगस्य शान्तिरभवत्, शापाच्च सर्वथा विमुक्तो जातः।

५ परमानन्दस्य प्राप्तिः- काव्य द्वारा मानवः तत्कालमेव पर निवृत्तेः अर्थात् परमानन्दस्य प्राप्तिं करोति। मानवः आनन्देन सह मोक्षस्यापि प्राप्ति काव्य द्वारा एव करोति। प्रीतिः एव वास्तविकऽऽनन्दः। हिन्दी-साहित्यस्य प्रसिद्धआचार्यं शुक्लोऽपि मतमिदं स्वीकृतम्।

६ कान्ता सम्मितस्य उपदेशस्य प्राप्तिः- साधारणतः मानवः कस्यञ्चिदपि उपदेशं सहर्षं न धारयति। कस्यापि शब्दः तस्य मनसः अनुकूलः भवति न भवति च। कान्तायाः (स्त्रियाः) वाणी तथा शब्दाः मानवस्य कृते रुचिकराः भवन्ति। तस्याः वचनानि कठोराण्यपि सध्यानेन प्रेम्णा च शृणोति, तदनुसरणञ्च करोति। इत्थ काव्यस्य मधुरैःकर्णमनोरमैः शब्दैः मानवस्य उपदेशस्य प्राप्ति जायते।

७ चतुर्वर्गप्राप्ति :— संस्कृतस्य मान्या आचार्याः धर्मार्थकाममोक्षाणां चतुर्वर्गाणां प्राप्ति मानव जीवनस्य लक्ष्यं स्वीकुर्वन्ति। काव्यमपि ते अस्य प्रयोजनस्य साधन कृतवन्तः।

८ कला-निपुणताः- आचार्य भामहः साहित्य-सर्जनस्य एक लक्ष्य कलानिपुणतामपि स्वीकरोति। यः जनः साहित्यसर्जनं करोति स कलायां निपुणतां सहजमेव प्राप्नोति।

९ मनोरंजनम्:- मनोरंजनमपि एकं महत्वपूर्णं प्रयोजनमस्ति। आदिमः आचार्य भरतमुनिः काव्य "दुःखार्तानां, शोकार्तानां श्रमार्तानां तपस्विनाञ्च विश्रान्तिकरः कथयति। वास्तविक रुपेण साहित्य मनोरंजनस्य साधनमपि अस्ति।

१० स्वान्त सुखाय:- तुलसीदास-प्रभृतयः आचार्याः काव्यं स्वान्तसुखाय मन्यते। स्वात ते काव्यं हृदयस्य मुक्तऽऽवस्थाय, मानवहिताय, आत्माभिव्यक्तिः आत्मानुभूतिश्च स्वीकुर्वन्ति। इत्थं काव्यस्य इमानि प्रयोजनानि सन्ति तेषां प्राप्त्यर्थं मानवेन काव्य सेवनं कर्तव्यमेव।

ग्राम समलोह
पत्रालय नवगांव, त० अर्की,
जिला सोलन (हि० प्र०)

राजकीय संस्कृत महाविद्यालये महाकवि कालिदास जयन्त्यावसरे पुष्पाञ्जलयः

देव राम सती

भास्वान्भारिव भाति कीर्तिः जगति,
यस्य सदा वै नवा ।
इन्दौ कान्ति समा लसति परितः,
तस्य प्रभा या विभा ।
काव्य नाट्य रसामृतेव धवला,
श्रृंगार हारावली ।
प्रध्वस्तं सुरभारती परतरम्,
कालिदासं नमामः ॥१॥

लोकेऽस्मिन् सरति महिमा,
मानसे मानवानाम् ।
कण्ठे यस्य वसति सदा,
भारती भारतीयाः ।
धन्यास्ते हि भवन्ति मुदा,
मोद माना जनाः ये ।
लोका अद्य मुदित मनाः,
कालिदासं स्मरन्ति ॥२॥

सरस्वती तस्य तथैव सिद्धाः समाद्रियन्ते विबुधा समाजे ।
तारा गणाश्च परितो स्फुरन्ति, नभे नवैः वै किल भानुचन्द्रैः ॥३॥

कथा प्रसंगेषु च गोष्ठी वन्धे,
काव्ये तथा नाट्य समासदेपु ॥
उच्चारणीया किल कीर्ति यस्य,
तं कालिदासं शिरसा नमामि ॥४॥

विद्वद्वरेण्यं जगत सुप्रसिद्धम्,
विश्वस्य चेतांसि जितानि येन ॥
'जयन्ति काले' समादरणीयम्,
तं कालिदासं शिरसा नमामि ॥५॥

दिशान्तराले मनसोन्तराले,
भूमौ जले वा यदि वाम्बराले ॥
सर्वत्र भाति खलु कीर्तिः यस्य,
तं कालिदासं शिरसा नमामि ॥६॥

"गुरु कवीनां" ननु कालिदासः,
सचेतसानां विहितो विलासः ॥
देवी गिरा यस्य जिह्वाग्र वर्तिः,
तं कालिदासं शिरसा नमामि ॥७॥

काव्य तरौ यस्य फलानि दृष्ट्वा,
अमृतमयानि रसाद्रतानि ॥
उत्पनुत्य मन्दां किल वामनेव,
तं कालिदासं शिरसा नमामि ॥८॥

शिष्यैः तथाचार्यवर्यैः समेतैः,
अभ्यागतान्यैरधिकारि वर्गैः ॥
संकीर्तनीय विविधैः गुणैः यः,
तं कालिदासं शिरसा नमामि ॥९॥

वाण्येव पुष्पाणि भावो फलानि,
कराञ्जलानि च पत्राणि एवं
अकिञ्चनोऽहं ननु देवरामः
तं कालिदासं शिरसा नमामि ॥

राजकीय संस्कृत महाविद्यालय
(बयाटू)

"धन्योऽयम् हिमाचलः"

○ सतीश शर्मा शास्त्री

नगाधिराज हिमाचलस्य महत्वं न केनापि शक्यते सम्यग् वर्णयितुं जगति। प्रथमतोऽस्योपकारानपि पूर्णतः वर्णयितुं न पारयति मनुजः। यतोऽयं निजांश भूतस्य हिमस्य सततं गलपनेन सृजति शतशो निर्झरान्। ते च निर्झरा नदी-नद रूपेण वहन्ते। निम्न गामिनः समस्तमपि भारत सिंचन्त: हरीतिमां कुर्वन्ति, सस्यं चोत्पादयन्ति।

अनवरत च वनोपवनपादपान् सिञ्चन्तो विविध रस पूर्णानि, विविध आकृतीनि, सुमधुराणि च फलानि प्रयच्छति सेव-एलमादय: प्राणिभ्य:।

अस्मिन् विषयेऽनुकरोत्ययं प्राकृतिम्। यतोऽयं प्रकृतिरपि परोपकारस्यैव शिक्षां ददाति। परोपकारायैव सूर्यस्तपति, चन्द्रो ज्योत्स्नां वितरति, वृक्षाः फलानि वितरन्ति, नद्यो वहन्ति, मेघाः वर्षन्ति, एवोक्तं केनापि — "परोपकाराय सतां विभूतय:"।

एतादृशान् हिमाचलस्य सद्गुणान् अवलोक्य पूर्वं सर्गादौ महर्षय: सद्गुणलोलुपा अस्मद् पूर्वजा: अस्यैव हिमवत: सुखदोत्सङ्गे स्थित्वा वेदोपनिषदादि सच्छास्त्राणां विकासं प्रचारं प्रसारं च अकुर्वन्। देव गिरं संरक्षयितुं ते च महर्षयोऽस्यैव हिमाचल गिरिकन्दरासु एव न्यवसन्। अत एव अस्मिन् हिमाचले यावन्ति देवता आयतनानि ग्रामेषु वनोपवनेषु प्रसिद्धानि-अप्रसिद्धानि च मन्दिराणि निरीक्ष्यन्ते मूर्तयश्च विविधा: आकृतयोऽवलोक्यन्ते, न तथा अन्य देशेषु प्रान्तेषु च इति तु सुविदितमेव।

अस्माभिरपि हिमाचलस्यैव प्राङ्गणे जन्मगृहीतम्। करुणाकरेणैव अनेन हिमाचलेन प्रदत्तेन्नान्नवारिणा जीवाम: अस्यैव रज: कणेषु क्रीडाम: आनन्दमनुभवाम: च। विविध विहङ्गमानां कलरवामकर्णयन्त: सुखिनो भवाम:। सुसमृद्धिमदयं प्रदेशम् माप:।

अत्र अलका: अद्रंका दाडिम सेवक प्रभृतीनि फलानि च विदेशेष्वपि प्रेष्यन्ते। यावन्तो लोहादिधातवोऽत्र समुपलभ्यन्ते न तावत् अन्य देशेपु। कारनात्न:, माषा:, गोधूमा: तण्डुल प्रभृतीनि च अन्नानि यथा अस्मिन् हिमाचल प्रदेशे उत्पद्यन्ते न तथा अन्यत्र क्वापि। किमधिकमस्माकं जन्मभूमिरियं स्वर्गादपि गरीयसीति तथ्यम्।

इन्द्रादयो देवा: अपि जन्मात्र गृहीतुं सततमाराधयन्ति शिवम् । अस्यैव हिमाचलस्यैकस्मिन् दिग्विभागे दाडला नामकी-सुरम्यातिनयभिरामा प्रकृति स्थली वर्तते । स्थानोऽय शिमला-मण्डी प्रमुख राजमार्गमुपरि अस्ति । अत्रत्य प्राकृतिक छवि न वर्णयितुं शक्नोति । नि:सन्देह मम हिमाचल प्रदेशोऽयं अतितराम शोभते । सत्यमस्ति-

धन्य हिमाचलोऽयम्
धन्या सुर भारती ॥

ग्राम-कोटला (पजयारा)
पत्रालय दाड़लाघाट
त० अर्की
जि० सोलन 171102.

भारतीय संस्कृतौ नारी स्थानम् आधुनिका नारी च

● रामेश्वर दत्त शर्मा दर्शनाचार्य

द्विधा कृत्वात्मनो देहमर्धेन पुरुषोऽभवत् ।
अर्धेन नारी तस्यां स विराजमसृजत्प्रभुः ॥ मनुः 2-32 ॥

मनुस्मृत्याः श्लोकेऽस्मिन् मनुमहोदयेनैतत् स्वीकृतम्, यत्सृष्टेः कारणमेकाकि ब्रह्म नास्ति अपितु मायाऽपि तस्य शक्तिः विद्यते । सृष्टयादौ तेन स्वशरीरस्य भागद्वयं कृत्वा स्त्रीपुरुषयोर्निर्माणं विहितम् । वैदिकसाहित्येऽपि यः सिद्धान्तः स्थिरीक्रियते तत्रापि नार्याः प्राथम्यमुच्यते । जीवन मार्गे प्रविशन्तं बालकं वेदः सर्वप्रथमं स्त्रीसम्मानमेव शिक्षयति यत् "मातृदेवो भव" । प्राचीनर्षिभिः स्तुतिषु "त्वमेव माता च पिता त्वमेव" इति रूपेण परमात्मनः सर्वप्रथमं मातृरूपेण स्तुतिः कृता । यज्ञादिसमस्तधार्मिककृत्येषु पत्नीरहित पुरुषस्य अधिकार एव नास्ति । विवाहसंस्कारेऽग्निपरिक्रमणकाले नार्याः अग्रगामित्वस्य व्यवस्था हिन्दुधर्मे नार्या उत्कृष्टत्वं सूचयति । नारीसम्मानविषये मनुना तु मनुस्मृत्याः तृतीयाध्याये स्पष्टशब्देषु लिखितम् -

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता ।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः ॥(मनु॰ 3/56)

किम्बहुना भारतीयसंस्कृतेः प्रौढग्रन्थेषु नार्याः सर्वथा उत्कृष्टत्वं प्रस्थापितम् । किमिदमुचितमनुचितं वेति विचारणीयं विद्यते ।

साम्प्रतिके काले इदं तु निर्विवादं यत् भारतीयसंस्कृतेः अमूल्यनिधिभूतेषु वेदादिनिगमग्रन्थेषु हिन्दुधर्मेतरधर्मावलम्बिनोऽपि जनाः मुग्धाः तान् प्रति आकृष्टाश्च सञ्जाताः । अस्याकर्षणस्य कारणम् इदमेव यदस्माकं धार्मिकग्रन्थेषु यल्लिखितं तत्सर्वं प्रामाणिकं यथार्थप्रतिपादकञ्च । अतस्तत्र यं विषयमधिकृत्य लिखितं तस्य प्रामाणिकं विवेचनमपि तत्रैव दरीदृश्यते । पाश्चात्य संस्कृति प्रभावरहिताः स्वहिन्दुसंस्कृतिरक्षणपरायणाः केचन भारतीयाः ये वेदेषु स्वधार्मिक-ग्रन्थेषु च विश्व-

सन्ति तेषां दृष्टौ तु तत्र लिखितं सर्वं प्रमाणसङ्गतम् उचितञ्च। अतः नार्याः उत्कृष्टत्वं यस्य प्रतिपादनपरमाकं धार्मिक ग्रन्थेषु विलोक्यते न तदनुचितमप्रामाणिकञ्च ।

स्त्री पुरुषस्य प्रत्येकं कार्ये धार्मिकानुष्ठाने सहभागिनी कथिता, सहैव च तस्याः केचन धर्मा अपि तत्र प्रतिपादिताः येषामाचरणं कृत्वैव सा पुरुषकृतस्य शुभकर्मणोऽर्धभागं ग्रहीतुम्शक्नोति। पुरुषस्य उग्रस्वभावत्वात् तस्य कृते बाह्यक्षेत्रस्यैव व्यवस्था कृता यत्र च स राजाऽपि भवितुम्शक्नोति, याचकः उच्चाधिकारी च। परं स्त्रियाः कोमल-नम्र सुकुमार-सरल-स्नेहप्रधानत्वात् तस्याः कृते गृहक्षेत्रमेव निर्धारितम् यत्र सा गृहलक्ष्मीरूपेण गृहराज्ञीरूपेण वा राजते। वेदे नार्याः कृते श्वसुरगृहे सम्राज्ञीसंज्ञा प्रदत्ता। यथाऽथर्ववेदे-

> सम्राज्ञ्येधि श्वसुरेषु सम्राज्ञ्युत देवृषु ।
> ननान्दुः सम्राज्ञ्येधि सम्राज्ञ्युत श्वश्र्वा ॥ (अथर्व 14/1/44)

स्त्रीकृते सम्राज्ञीशब्द उपयुक्त एव यतः पुरुषोयदपि स्वाजीविकयाऽर्जयति तत्सर्वं स्त्रीहस्ते समर्पयति। तस्य विनियोगश्च नार्येव यथावत्करोति। यदि पुरुषः एतन्न विदधाति तदा कुसङ्गेषु गत्वाऽर्थनाशं विधाय स्वजीवन मेव नाशयति। स्त्रिया रक्षितम् आवश्यकतानुसारं च व्ययीकृतं धनं न कदापि पुरुषस्य पकारं करोति। अतस्तस्या उत्कृष्टत्वं दुर्वारमेव।

पुत्रस्नेहस्योत्कृष्टता मातर्येव दरीदृश्यते। न सालमपि कष्टं स्वपुत्राय दातुमिच्छति। पुत्रोऽपि मातरं यथाऽभिलषति न तथा पितरम्। कुत्रापि दुःखकाले स "हा माता" इत्येव स्मरति। अतः पुत्र दृष्टौ मातुरेवोत्कृष्टता। पतिः क्रोधावेशेन पत्नीं बाडयति, असद्भाषणञ्च करोति परं सा सहनशीलताया त्यागस्य चाश्रयं प्राप्य न कुत्रापि स्वामिनोऽहितं चिन्तयति। पुरुषेषु न भवति सहनशीलता यतः रामेणैकस्य क्षुद्रजनस्य मुखात् सीताविषयकमपवाद श्रुत्वा तितिक्षाभावात् निर्दुष्टा सीता परित्यक्ता। परित्यागानन्तरमपि सा न कदापि स्वपत्युरकल्याणं चिन्तयति, सदैव तस्य मङ्गलमेवभिलषति। अतः सहनशीलतां त्यागं च दृष्ट्वा तस्या उत्कृष्टत्वं सर्वथैव समीचीनम्। स्त्रीप्रशंसायां मनुना इत्थं लिखितम्-

> शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम् ।
> न शोचन्ति तु यत्रैता वर्द्धते तद्धि सर्वदा ॥
> तस्मादेताः सदा पूज्याः भूषणाच्छादनाशनैः ।
> भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेषूत्सवेषु च ॥ (मनु, 3/57, 59)

अर्थात् यत्र स्त्रीभ्यः दुःख दीयते, तत्कुलं शीघ्रमेव विनाशं प्राप्नोति। यत्र च ताः प्रसन्नाः तत्कुलमपि प्रसन्नतां प्रवृद्धिञ्च याति। अतः भूषणवस्त्रभोजनैः स्वोन्नतिकामैः जनैः ताः सर्वत्र सेवनीयाः।

एवमेव बहूनि प्रमाणानि अस्माकं भारतीय संस्कृतेः स्तम्भभूतेषु वेदादिशास्त्रेषु समुपलभ्यन्ते। तेषां सर्वेषां मंश मात्रालोचनेन एतदेव स्पष्टी भवति यद्भारतीयसंस्कृतौ नारीणामुत्कृष्टं प्रतिष्ठितञ्च स्थानम्।

यथा भारतीय संस्कृतौ नारीणामुत्कृष्टत्वं तथा भारतेतरसंस्कृतौ अक्षीनक्षी भवति। म्लेच्छ संस्कृतौ तु नारी केवलं वासनापूर्त्यै मात्रं क्रीडनकं विद्यते, एतदर्थमेव तेषां धर्मेण एकस्मै जनाय चतुःस्त्रीणां व्यवस्था विहिता। तेषां सम्प्रदायां पत्नीबाहुल्यम् इदमेव सूचयति यद्वासनापूर्तिमन्तरेण न नार्यां किमपि प्रयोजनं साध्यते। परमेतद् विपरीतं भारतीय संस्कृतौ नारी सर्वत्र पूज्यते आद्रियते च। ईसाई सभ्यतायामपि स्त्रीं प्रति क्रूरैव विद्यते। परिणयानन्तरं परित्यागं प्राप्य बह्वय पाश्चात्यस्त्रियः पुरुषान्वेषणार्थम् इतस्ततः भ्रमन्ति। न ताभिः भारतीयनारीवत् एकपतिव्रतं स्वीक्रियते। अभारतीयाः बाह्य रूपेण परस्परं भुजकल्पवल्लीं गलेऽवलम्ब्य भ्रमन्तः नारीसमानतायाः कृत्रिममभिनयं कुर्वन्ति परं यदैव अन्योन्य प्रति त्यागस्य प्रश्नः उपस्थितौ भवति तदैव शुकवत्स्वचक्षुपरिवर्तनं विधीयते। आन्तरिक रूपेण द्रष्टुं शक्यते यद्यदा पाश्चात्यदेशीयाः पुरुषाः स्त्रियः वा किमपि वस्तुजातं क्रीणन्ति तदा द्वाभ्यां क्रीतवस्तु सूचिः पृथक-पृथक प्राप्य पृथक् पृथगेव राशि भुगतानं क्रियते। कोऽपि पाश्चात्यपुरुषः स्वसम्पत्ति स्वपत्नी हस्ते नैवार्पयति यतस्तत्र द्वयोः काऽपिनिश्चिता स्थितिः नास्ति। भूषणहीनत्वमपि तदैव पाश्चात्यनारीषु विलोक्यते। एतद् विपरीतं हिन्दुधर्मे स्त्रीणाङ्कृते ईदृशमत्यन्तसम्मानपूर्णं प्रतिष्ठितञ्च स्थानं विद्यते यादृशं भारतेतरसंस्कृतौस्वप्नेष्वपि असम्भवम्।

परमिदानीं खेदेन कथ्यते यद्भारतीयनारी स्वकर्तव्यं संस्कृतिं च विस्मृत्य पाश्चात्यनारीवत् विघातकप्रवृत्तिषु निमग्ना जायते। सीतासावित्री-अनुसूयादीनां पुनीतादर्शान् त्यक्त्वा पतङ्गभावं प्राप्तुं लालायिता दृश्यते। पातिव्रत्यं हिन्दूनारीणां आभूषणं मन्यते यतः मुगलशासनकाले क्षत्रियललनाभिः स्वपातिव्रत्यधर्मसंरक्षार्थं स्वकुसुमकोमलकलेवराणि अग्निसात्कृतानि परं स्वशरीरे परपुरुषस्पर्शो न स्वीकृतः। मरणानन्तरं स्त्रियाऽपरपरिणयं क्रियते, जीवति सत्यपि च पतौ स्वप्रेमिभिः सह पलायनं विधीयते। अतोऽद्यत्वे कथं नारी पूजनीया या पतिजीवनकालेऽपिपातिव्रत्यं न पालयितुं शक्नोति। पतिसेवा एव नार्याः स्वर्गप्राप्तिसाधनमिति शास्त्रवचनं भोगासक्तअधनचपलारमणीभिः वृथाप्रलापः इति कृत्वा उपहस्यते।

'दुर्गुणाः विनाशकारणम्'! इति तु सुनिश्चितं-परं स्त्रियाः दुर्गुणाः न केवलं स्त्रीमपितु सम्पूर्णं परिवारं नरके पातयन्ति। स्त्रियाः दुर्गुणाः मनुस्मृतौ इत्थं गणिताः

पानं दुर्जनसंसर्गः पत्या च विरहोऽटनम्।

स्वप्नोऽन्यगेहवासश्च नारीसंदूषणानि षट्॥ (मनु. 9/13) मादक द्रव्यसेवनं स्त्रीणाङ्कृते निषिद्धं परमिदानीन्तु अस्य निषेधकथनं स्वमूर्खताद्योतनमेव। यतः पाश्चात्यसंस्कृतिप्रभावप्रसूतासु नारीषु एतत्सा

मान्यरूपेण दृश्यते दुश्चरित्रपुरुषमभिमलनविषये तु किं कथनीयम् । इतस्ततः व्यर्थभ्रमणं पतिकथनविरुद्धाचरणं तु नारीणां दैनिकं कर्म विद्यते । पत्यु वाञ्छाप्रतिकूलमपि पाश्चात्यवस्त्रवेशपतङ्गायिताः भारतीयाः नार्यः परपुरुषसमक्षे स्वोत्कृष्टताज्ञापनाय स्वसौन्दर्यप्रदर्शनाय च हाव भाव चेष्टाभिः नयनचालनं कुर्वन्त्यः आपणे भ्रमन्त्यः सानन्दमनुभवन्ति । अतः एते सर्वे दुर्गुणाः यदा भारतीयनारीणां जीवने नित्यं प्रति दृश्यन्ते तदा अद्यत्वे तस्याः उत्कृष्टता तु शशशृङ्गवद्विद्यते । पुराकाले पातिव्रत्य धर्मपरायणाः नार्यः स्वपतिमन्तरेण पुरुषान्तरं अवलोकयन्त्यपि न स्मः परिचयस्य तु का वार्ता । परमिदानीं यत्र कुत्रापि पुरुषाणां न तथा परिचिताः जनाः यथा स्त्रीणाम् । मुखावरणप्रथाऽपि पातिव्रत्यधर्मपालनार्थैव प्रचलिताऽऽसीत् येन परपुरुषदर्शनं न स्यात् । परमिदानीं शिरसाच्छादनार्थं गृहीता विविधवर्णवर्णिता वस्त्रखण्डपट्टिका गलस्य माला एव भूत्वा स्कन्धद्वये राजते । न तस्या किमपि प्रयोजनमवशिष्टम्

प्रचीनकाले स्त्रियः स्वगौरवेण ख्यातिं गताः। तासां नामभिरेव पतीनां ख्यातिजर्ता, न पतिनामभिः नारीणाम् । इदानीन्तु पत्युर्नाम विना कोऽपि स्त्रीं न परिचिनोति यतस्तासु तादृशाः गुणाः न विद्यन्ते यैः प्राचीनस्त्रीभिः स्वनाम धन्यं कृतम् ।

पाश्चात्यशिक्षाशिक्षिताभिः बाह्याडम्बरसंसारविहारिणीभिः भारतीयस्त्रीभिः स्वकर्तव्यं प्रति चिन्तनीयम् । पातिव्रत्यधर्मपालनार्थं महत्तो महत्तरं कष्टमपि चाविगणय्य निश्छलपतिप्रेमसेवनेहया नानुभाव्या । राज्यमविगणय्य स्वविक्रमं कृत्वा च पतिऋणप्रत्यावर्तनं कुर्वन्त्याः शैव्यायाः, वने स्वपत्नीमेकाकिनीं त्यक्त्वा गच्छन्तं नलं स्वकौशलेन प्राप्यन्त्याः दमयन्त्याः, यमबन्धनात् पतिमोक्षं कारयन्त्या सावित्र्याः, पत्युरपमान कारणात् पितुर्यज्ञे स्वशरीरम् अग्निसात्कुर्वन्त्याः सत्याः, अग्निविशुद्धायाः पुनर्निर्वासितायाः अपि सर्वदा पतिकल्याणम् अभिलषन्त्याः सीतायाः चरित्राणि भारतीयनारीभिरनुकरणीयानि तदैव भारतीया नारी पुनः प्राचीननारीवत् उत्कृष्टतां प्रतिष्ठाञ्च प्राप्तुञ्शक्नोति अन्यथा तु देवाधिदेव एव शरणम् ।

॥ इति ॥

प्राध्यापक,
श्री सरस्वती संस्कृत महाविद्यालय,
डगार, बिलासपुर
हिमाचल प्रदेश ।
174023

tharahkardu.in

H.A.A.C.L. पंजि० सं०/आर० एम० 2827175

सचिव हिमाचल कला संस्कृति और भाषा अकादमी क्लिफ़ एण्ड एस्टेट, शिमला-171 001 दूरभाष 2651 द्वारा प्रकाशित तथा न्यू प्रिन्टर्ज ग्रीन फील्ड कॉटेज, शिमला-171 001 दूरभाष 6660 द्वारा मुद्रित